अर्हन्

जैन धर्म और तेरहपंथ

"सव्व जग्ग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं" —"प्रश्न व्याकरण सूत्र" संवर द्वार

लेखक

स्थविर पद विभूषित श्री स्वामी १००८ श्री कुन्दन लाल जी महाराज तदाज्ञावर्ती पण्डित रत्न श्री १००८ श्री छोटेलाल जी महाराज

तदन्तेवासी मुनि सुशील शास्त्री

"भास्कर"

जगरांव, नवम्बर १६४८

मूल्य २)

प्रकाशक
एस० एस० श्री रूपचन्द जैन,
कुमार सभा, जगरांव।

१—जिन महानुभावों ने इस पुस्तक के प्रकाशन में आर्थिक सहायता दी है उनको हार्दिक धन्यवाद !

२—प्रेस तथा हमारी असावधानी से जन्य अशुद्धियों के लिये क्षमा :—"प्रकाशक"

मुद्रक
बालकृष्ण एम० ए०,
युगान्तर प्रकाशन लिमिटिड,
मोरीगेट, देहली।

आत्म निवेदन :—

—:&:—

"आज का युग क्रान्ति का युग है"। यह उपदेश नहीं चेतावनी है, आप आज के युग की आंखों से देखिए, अठारहवां युग बीते दो शताब्दी हो चुकी हैं। आज का धरातल आलोचना के झूले में झूल रहा है। प्रत्येक समाज व धर्म बिना आलोचना की कसौटी पर कसे, माना नहीं जा सकता। मुझे आज से चार वर्ष पूर्व "तेरहपन्थ" का कुछ भी ज्ञान नहीं था। लेकिन सन् १९४६ के चातुर्मास ने इस अटपटे पंथ का गहरा परिचय पाने का अवसर दिया। जब कि चातुर्मास स्थित सतियों की रागद्वेष रहित स्थानकवासी साधुओं की घोर निन्दा, और सार्वजनीन भाषण साधु ने वस्त्र नहीं धोने, साधु ने मकान पर टट्टी नहीं जाना आदि धर्म के नाम से राष्ट्र सेवा, जीवों की सहायता, दरिद्रों को दान, और दुःखित पीडित हो रहे जीव की रक्षा में महापाप कहकर सार्व भौमिक जैनधर्म का प्रचार देखने में आया।

मैंने इन तेरह पन्थियों के मान्य ग्रन्थों का अध्ययन किया, किन्तु जब मुझे जीतमल कृत "भिक्षुजसरसायण" पुस्तक पढ़ने को मिली (भीषण जीवन) तो मेरा हृदय पढ़कर सन्न सा रह गया, भीषण जी की अबोधता पर हृदय द्रवित हो गया और मुझे ऐसा

भान हुआ कि "भीषण जी की आत्मा प्रतिशोध (प्रायश्चित) के लिए लालायित है और मुझे प्रेरणा दे रही है। कि "सुशील ! क्रान्ति की अमिट आग भड़का दो, जिससे मेरे फैलाए मिथ्यात्व का अन्धकार समाप्त हो जाए"। मैं तब से लगातार उस प्रेरणा को कृतार्थ करने में भरसक प्रयत्न कर रहा हूं, मुझे यह सनक है, मैं कहता हूं कि तेरापंथियो ! शास्त्र का पाठ देखलो या दिखादो बन जावो या बनालो, एक बात होकर ही रहेगी। अतः भीषण जी का यथार्थ जीवन, सिद्धान्त सन्तुलन और सास्कृतिक मतभेद दिखाने के लिए "जैनधर्म और तेरहपंथ पुस्तक का संकलन किया गया। जो मेरा सब से प्रथम लेखन कार्य है। त्रुटिएँ रहनी नैसर्गिक ही हैं किन्तु मैं सूचना देने वाले और सहायकों का तथा उपाध्याय श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज का आभारी हूं और रहूंगा, सहयोगियों का धन्यवाद करूँ यह मुझे पसन्द नहीं।

आपका :—

मुनि सुशील शास्त्री, भास्कर।

महान् व्याख्यातृत्व, सफल व्यक्तित्व, आर्ष तेजस्त्व
के प्रतीक उपाध्याय जैनधर्म भूषण

श्री स्वामी प्रेमचन्द्र जी महाराज

के कर कमलों में
सहर्ष समर्पण

आप का शिशु—

मुनि सुशील शास्त्री

भास्कर ।

सम्मतियाँ

जैनधर्म दिवाकर जैनागमरत्नाकर साहित्य रत्न जैनाचार्य
श्री आत्माराम जी महाराज लुधियाना से—

आपकी लिखी हुई पुस्तक जैनधर्म और तेरहपंथ, मैंने मुनि सुरूपचन्द जी से सुनी पुस्तक उपादेय है, आप का प्रयास परम प्रशंसनीय है।

———

व्याख्यान वाचस्पति, जैनधर्म भूषण, उपाध्याय
श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज पटियाला से—

आपकी जैपधर्म और तेरहपंथ, नाम की पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है, जो कुपंथ में भटकने वाली जनता के लिए पथ प्रदर्शक होगी। अतः पुस्तक प्रकाशनीय है।

———

विषय-सूची

संख्या	नाम			पृष्ठ
१	भीखन परिचय	...	...	१
२	मीठे शब्द	...	...	१७
३	प्यारा प्रसाद	...	...	१८
४	थोथी कल्पना	...	...	२०
५	महा पाप	...	...	२६
६	पंथियों की नीचता	...	...	५२
७	विषैली धृष्टता	...	...	६३
८	माता पिता की सेवा में पाप	...	...	६५
९	दया के नाशक	...	...	६६
१०	क्या मिथ्यात्वी की क्रिया आज्ञा में है		...	९२
११	क्या ये साधु हैं	...	...	१०३
१२	सबसे बड़ा धोखा	...	...	११५
१३	आज कल के वीतराग संयमी		...	१२७
१४	सुत्रानुसार चलने की प्रतिज्ञा		...	१३४
१५	तेरापंथियों की सम्यक्त्व प्रणाली		...	१३८
१६	तेरपंथ और जैन शास्त्र	...	...	१४१
१७	तेरापंथ और जैन धर्म	...	...	१६६
१८	समय की पुकार	...	...	१८३

"भीखन परिचय"

अथवा

"तेरह पंथ मत प्रवर्तक श्री भीखनचन्दजी के विषय में यत्किंचित्"

मारवाड़ देश में "कण्टालिया" नामक ग्राम के रहने वाले ओसवाल "संक्लेचा" गोत्रीय भीखनचन्द नामक एक व्यक्ति हो चुके हैं। उन्होंने संवत् "१८०८" में बाईस सम्प्रदाय के आचार्य श्री **रघुनाथ** जी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। पश्चात् शहर **"मेरता"** में परम-पूज्य रघुनाथ जी महाराज **भीखन** जी को **"भगवती"** सूत्र पढ़ाने लगे। परन्तु भीखन जी को कुछ बातें जँचतीं और कुछ बातें न जँचती थीं। उनकी यह चेष्टा श्रावक **समर्थमल** धाड़ीवाल ने देखी। उक्त श्रावक ने पूज्य श्री जी महाराज से कहा कि—आप भीखन जी को **भगवती** सूत्र पढ़ाकर विषधर सर्प को दूध पिलाकर पुष्ट कर रहे हैं। यही भीखन आगे चल कर निन्हव होगा और उत्सूत्र परूपणा करेगा।

(सद्धर्म मण्डन से उद्धृत)

(उक्त श्रावक की यह भविष्य वाणी केवल पाठकों को सत्यता परखने के लिये दे दी गई है क्योंकि—गांव का पता रूड़ियों से ही लग जाया करता है)

पूज्य श्री जी ने इस बात की ओर कोई चिन्ता न की वे फिर भी भीखन जी को पढ़ाते ही चले गये। गुरुदेव का हृदय सात्त्विक

सद्भावना से ओत प्रोत था। वातावरण, उद्देश्य, भविष्य और सद्विचारों का प्रबल संघर्ष था। गुरुदेव की किंचित् चिन्तातुर आत्मा श्रावक की भविष्य वाणी पर आ-आकर टकराती अवश्य थी, परन्तु सद्विचारों का तीव्र प्रवाह निराशा को आशा में परिवर्तित कर दिया करता था। वे सोच लिया करते थे कि—भीखन अभी शास्त्रीय ज्ञान से एक दम अनभिज्ञ और अनुभव से शून्य है, अतः सद् ज्ञान होने पर आर्हत-पथ का स्वयमेव पथिक बन जायगा। परन्तु भीखन तो—"मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की" इस लोकोक्तिका सजीव प्रमाण बनना चाहता था।

गुरुदेव सद्विद्या के गूढ़ रहस्य समझाते, पग-पग पर अपना अमूल्य समय देकर शंका समाधान कराते, किन्तु वह सब अमृतोपम शास्त्रीय ज्ञान सर्प दुग्धवत् हलाहल विष की गांठ बन जाता। "पयः पानं भुजंगानां केवलं विष वर्धनम्" अर्थात्—सांप को दूध पिलाना केवल जहर ही बढ़ाना है। आखिर वह जैन धर्म के व्यापक सिद्धान्तों के विपरीत संवत् १८१५ में गुरुदेव के समक्ष ही अवर्णवाद बोलने लग पड़ा। जैसे कि (दीन अनाथ लूले लँगड़े आदि को सहायतार्थ भोजनादि देना एकान्त पाप है, और जो इसे पुण्य बताता है वह भी एकान्त पापी है) इत्यादि।

गुरुदेव इस प्रकार धर्म पर होते हुए कुठाराघात को न देख सके। शास्त्रों का विरोध, दया का नाश करने पर उतारू हुए भीखन को बहुत कुछ समझाने लगे, जब वह किसी भी प्रकार से

मानता हुआ दिखाई न दिया तो अन्त में उन्होंने उसका बहिष्कार करना ही उचित समझा। क्योंकि वे हमारी तरह आंख मून्दना नहीं जानते थे। वह इस बात को बुरा समझते थे कि आततायी हम पर, हमारे प्यारे धर्म पर आक्रमण करे, शासन नायक भगवान् **महावीर** पर कलङ्क लगाये, उनके अवर्णवाद बोले और हम चुपचाप भयङ्कर अपमान को सहते रहें। वे उपाय करते थे और उसका पूरा प्रत्युत्तर देते थे। जब उन्होंने समझ लिया कि यह सुधरने का नहीं तब उन्होंने आज्ञा दे दी—या तो श्रद्धा ठीक करो नहीं तो इसी समय सम्प्रदाय से बाहर हो जावो। यह कड़ा उपाय पूज्य जी ने तीसरी बार बर्ता था। क्योंकि इससे दो बार पहले भी वह विरोध कर चुका था। सम्प्रदाय में फूट डाल देना तो इसके बांये हाथ का खेल था। किन्तु जब जब गुरुदेव इसे धमकाते तो उसी समय दण्ड प्रायश्चित्त ले क्षमा मांग लेता था। गुरुदेव सरलता से इसे क्षमा भी कर देते थे। यह निर्भय होकर अपनी पार्टी बनाने लग जाता था। अन्ततः इसने तेरह साधुओं की एक मण्डली बना ही ली। आचार्य श्री जी ने जब इसे निकाला तो इसकी मण्डली भी तलमलाने लगी। गुरु महाराज ने इनको बहुत कुछ समझाया किन्तु वे समझने वाले कब थे, वहां तो समझाना-बुझाना शान्ति के स्थान पर आग भड़काने का काम करता था। कहा भी है—

उपदेशोहि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये।

अर्थात्—"मूर्खों को उपदेश देना क्रोध को भड़काना हैं" अतः

उनका सब प्रयत्न विफल गया। गुरुदेव ने सोचा कि—शास्त्र में भी यही लिखा है कि—कुगुरु के बहकाए हुए को समझाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव होता है। अतः इनको भी सम्प्रदाय से बहिष्कृत करना ही उचित होगा। तब आचार्य श्री जी ने आज्ञा दी जितने भी साधु अशुद्ध श्रद्धा वाले हैं वे सब सम्प्रदाय से बाहर हो जावें। आचार्य श्री जी की जब यह सिंह गर्जना सुनी तो वे सब साधु दुम दबाकर भाग निकले।

यदि इनमें आत्म शक्ति थी, चारित्र बल था, शास्त्र श्रद्धा थी तो इनका प्रथम कर्तव्य था कि गुरुदेव की आज्ञा में रहकर कुछ बनकर दिखाते, बनते आदर्श। परन्तु इन्होंने तो सेवा लाभ बता २ कर संसार को लूटना था। भगवान् को चूका (पापी-रागी) कह २ कर दुनियां की आंखों में धूल झोंकना था। सदाचार के नाम पर व्यभिचार का नग्न नाच नचाना था।

अब वे तेरह ही साधु इकट्ठे होकर किसी की दुकान पर जा ठहरे। दिल में एक नूतन पंथ बनाने का जनून सवार था। कुछ पाप नियम घड़ भी लिये थे। कुछ शेष भी थे, परन्तु अभी तक पन्थ के नाम का निश्चय भी नहीं हो सका था। अतः पंथ प्रणाली निर्माणार्थ बड़ी चिन्ता की जा रही थी। यतः यह पंथ था, धर्म नहीं। पथ बनाने वालों का ध्यान विशेष कर जनता को फँसाने का होता है, फँसाने के लिये फूट डाल देना, कपट करना, ढौंग रचना आदि २ कार्य आवश्यक से हो जाते हैं। इतने में वहां एक मिरासी आ पहुँचा।

साधुओं को देखकर वह बोला—महाराज! उदास कैसे बैठे हो, क्या कारण है?

भीखन—भाई क्या बताएं, गुरु ने हमें सम्प्रदाय से बाहर कर दिया है। हम नया पंथ बनाना चाहते हैं, पर अभी तक पंथ का नामकरण संस्कार नहीं कर सके हैं, बस इसी बात की चिन्ता है।

मिरासी—ओह! नाम रखना क्या कठिन है, बताओ कितने साधु हो?

भीखन—हम तेरह साधु हैं, नाम अच्छा सा बताना।

मिरासी—सुनिये:—

आप आपको गिल्लो करे; ते आपको मंत।
देखोरे शहर के लोगां; तेरा पंथी तंत॥

भीखन ने जब अपने पंथ का नाम तेरा पंथ सुना तो बड़ा हर्षित हुआ। यतः "तेरा" शब्द के दो अर्थ निकलते हैं:—एक तो तेरां साधुओं का पंथ, दूसरा:—भगवान्! तेरा पंथ। किन्तु दूसरा अर्थ कल्पित है क्योंकि:—बागड़ देश में तेरा शब्द कहने में नहीं आता। वहां तो 'थारा' कहा जाता है। यदि द्वितीय अर्थ को समक्ष रखकर नामकरण किया जाता तो अवश्यमेव "थारा पंथ" नाम रखा जाता। वहां "तेरह साधुओं का निर्मित पंथ" ही अर्थ रख कर नाम कल्पित किया गया है। भीखन को नेता बना दिया गया। वे तेरह ही भेषधारी जहां पर स्थानक वासी साधुओं का गमनागमन नहीं था, उसी तरफ चल पड़े।

भोली जनता पर खूब आतङ्क जमाया। संसार जानता है कि :— घूक भास्कर के उदय होने पर कौनसा स्थान ढूंढता है? जहां किरणों का गमनागमन नहीं हुआ करता। अन्धकार व्याप्त होता है।

अब वे तेरह ही अपने मुख्य नियम बनाने लग पड़े।

भीखन :—सर्व प्रथम वेश में अवश्य विचित्रता आनी चाहिये। जैसे कि :—मुख पत्ती कम चौड़ी करलें, और लम्बी अधिक यदि कोई पूछे कि ऐसा क्यों किया तो उत्तर देना चाहिये; वायु काय की हिंसा से अपनी आत्मा बचाने के लिये। उत्तर है भी ठीक कि :—मुख पत्ती से तो वायु काय की हिंसा होती है क्योंकि :—वह एक अंगुल से अधिक चौड़ी होती है। किन्तु ये गजों ही लम्बे और चौड़े चोल पट्टे तथा चादरें वायु से फट-फट करते हैं, उन्हें भी तो छोटे कर लेना चाहिये था केवल लंगोटी ही बांध लेनी चाहिये थी। किन्तु तप, त्याग का तो वहां नाम भी नहीं था, वहां तो भेष बदलना ही उद्देश्य था। जैनाचार्य्यों ने मुख पत्ती का विधान इस प्रकार किया है :—

एक बीसं-गुलायाय, सोलसंगुल विच्छिएणो।
चउक्कार संजुयाय, मुहपोती एरिसा होई॥

"आवश्यक चूर्णी"

अर्थात् :—२१ अंगुल लम्बे और १६ अंगुल चौड़े वस्त्र की चतुष्कोण मुखपत्ती होनी चाहिये।

कुछ मनुष्य मुखपत्ती को मुंह पर बांधना शास्त्र विरुद्ध सम-

झते हैं उन्हें श्री आवश्यक सूत्र चूर्णी का यह पाठ ध्यान से पढ़ लेना चाहिये :—

मुहणंतिगण करणट्ठियाए, विणबंधइ जो को वि सावगो।
धम्मकिरिय करेइ तस्स एकारस्स, सामाइयस्सणं पायच्छित्त भवइ ॥

अर्थात् :—जो कोई श्रावक मुखपत्ती मुंह पर बांधे बिना सामायिक करे उसे ११ सामायिकों का दण्ड आता है।

दूसरी बात हमें दया के विषय में समझ लेनी चाहिये क्योंकि हमारा सारा विरोध दया के विषय में ही हुआ है। एक दिन की बात है कि :—हम सब जब आचार्य श्री जी के साथ इकट्ठे ही ठहरे हुए थे, तो शाम के समय शौच निवृत्ति के लिये सब साधु आचार्य जी समेत बाहर चले गये। जाते समय मुझे आचार्य जी कह गये कि :—भीखन। इधर इस मकान में कारण वश कुत्ती ने बच्चे दे दिये हैं, अतः ख्याल रखना, कभी कोई कुत्ती खा न जाय, मैंने उस समय तो हां करदी और वे सब बाहर चले गये। पीछे से एक कुत्ती आई और उन बच्चों को गर्दन से पकड़ पकड़ कर भूमि पर पटकने लगी। कभी उनके मांस को नोचती, कभी खून पीती "अन्ततः कुछ देर में वे बच्चे न उठने वाली नींद में सुला दिये गये। मैं बैठा २ तमाशा देखता रहा।" मैंने हटाने में अन्तराय समझ कर नहीं हटाया [ठीक भी है कई मनुष्यों के हृदय स्थल पर पत्थर का टुकड़ा निहित हुआ करता है उन्हें दया कहां ?] गुरु महाराज आये, उन मरे हुए बच्चों को देख कर बड़े

आश्चार्य चकित हुए, उन्होंने पूछा कि :—भीखन ! तू कहीं गया हुआ था ?

भीखन :—महाराज ! मैं यहां ही था ।

आचार्य श्री जी :—तो तूने कुत्ती क्यों न हटाई ये बेचारे बच्चे तो किसी कुत्ती के ही मारे हुए जान पड़ते हैं ।

भीखन :—महाराज ! मैं जीवों को बचाने के लिये साधु नहीं बना हूं । गुरु जी कहने लगे कि :—दया करना तो तेरा कर्तव्य ही था "मैंने कहा कि :—महाराज ! जीव बचाना पाप है" जो जीव बचाया जाता है उस जीव के द्वारा किये सब पाप बचाने वाले को लगते हैं । गुरु महाराज ने बहुत कुछ समझाया, परन्तु मैं अपने हठ पर अड़ा रहा । अतः दूसरा नियम यह होना चाहिये कि :—अनुकम्पा भाव से भी किसी प्राणी की रक्षा करना एकान्त पाप है ।

जब यह दूसरा नियम सब ने सुना तो इनमें ही विराजमान दयार्द्रहृदय मुनि रूपचन्द जी इस बात को सुनकर बड़े दुःखित हुए "धर्मात्मा के हृदय की उपज अनुकम्पा का गला घोंट दिया गया, यह देखकर उनकी आंखों में आंसू उछल पड़े, वे भगवान् की करुणा मन्दाकिनी में बह निकले ।

एक ब्राह्मण बालक तेजोलेश्या से जल रहा है, चीख रहा है, भगवान् ! बचावो मैं मरा "भगवान् उस पर शीतललेश्या छोड़कर उसे बचाते हैं" यदि ऐसे समय में भीखन जैसा कोई नराधम

होता तो क्या करता ? मौन । वे तो चतुर्ज्ञान धारी स्वयं भगवान् महावीर थे ।

ओः ! इतना अकाट्य प्रमाण कहां छुपाया जा सकता है उन्होंने साफ कह दिया कि भीखन ! हमारा पंथ कभी भी सूत्रानुसार नहीं चल सकता, और फिर भगवान् महावीर की आड़ में । वे तो स्वयं परम दयालु थे जब वे स्वयं अनुकम्पा करके एक ब्राह्मण बालक की रक्षा करते हैं तो कैसे हम अनुकम्पा से प्राणी की रक्षा करने में पाप कह देंगे । मण्डली नायक भीखन बोला, अरे रूपचन्द ! तुझे पता नहीं कि:—वह विप्रवटु उनका शिष्य था, शिष्य पर उन्हें मोह राग आगया, मोह से बचा लिया अनुकम्पा से नहीं । रूपचन्दः—आप सूत्र विरुद्ध न बोलें, पाठ पढ़ें ? देखिये भगवान् क्या कहते हैं:—

अहं गोयमा ! गोशालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकम्पणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणतेयलेस्सा तेय पडिसाहरणट्ठयाए एत्थणं अन्तरा अहंसीयलियं तेयलस्स निस्सरामि । जाए सा ममं सीयलियाए तेय लेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिण तेयलेस्सा पडिहया । (भगवती सूत्र, शतक १५)

अर्थात्:—हे गौतम ! उस समय गोशालक मंखलिपुत्र पर अनुकम्पा के लिये उस पर आती हुई तेजोलेश्या के निवारणार्थ मैंने शीतललेश्या छोड़ी । मेरी शीतललेश्या से वैश्यायन बाल तपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या प्रतिहत (वापिस) हो गई ।

भीखनः—माना किः—अनुकम्पा से बचाया, परन्तु यह तो

बताओ कि तेजोलेश्या के जीव शीतललेश्या द्वारा मरे तो होंगे ही। तभी तेजोलेश्या प्रतिहत हुई। साधु ने त्रस और स्थावर जीव की हिंसा करनी नहीं, भगवान् ने करी इसलिये उन्होंने पाप किया।

रूपचन्दः—लज्जा की बात है कि आपको इतना भी पता नहीं कि;—तेजोलेश्या के पुद्गल और शीतललेश्या के परमाणु अचित्त होते हैं। जैसे सूर्य की किरणें अचित्त होती हैं। किन्तु जहां भी वे जाती हैं वहां ही उष्णता फैलाती जाती हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा की शीतल किरणें अचित्त होती हुई भी शीतल करती जाती हैं।

भीखनः—मुझे ऐसे प्रमाण नहीं चाहिए कि सूर्य की किरणें अगर अचित्त हैं तो तैजस आग भी अचित्त है। हां! यदि कोई मूलपाठ का प्रमाण है तो बताइये ?:—

रूपचन्दः—हां मूल पाठ भी है, देखियेः—

कयरणं भंते! अचित्ताविपोग्गला उभासन्ति जाव पभासन्ति ? कालोदाई! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसड्ढ़ा समाणी दूरं गता दूरं निवत्तइ, देसंगता देसं निवत्तइ, जहिं चणं सा निवत्तइ, तहिं तहि चणं ते अचिन्ता वि योग्गला उभासन्ति जाव पभासन्ति। (भगवती सूत्र, शतक ७ उद्दे० १०)

अर्थः—भगवान्! कौन से अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं। १—हेकालोदायिन्! क्रोधित हुए अणगार (साधु) से फैंकी हुई तेजोलेश्या दूर तक फैंकने से दूर और निकट में फैंकने से निकट

जाकर पड़ती हैं। जहां २ वह तेजोलेश्या पड़ती है वहां २ उसके अचित्त पुद्गल-प्रकाश करते हैं।

इस प्रकार भगवती सूत्र में तेजोलेश्या के पुद्गलों को अचित्त कहा है। अग्नि के सचित्त पुद्गलों का दृष्टान्त देकर हिंसा कहना और पाप बताना आदि सूत्र विरुद्ध नहीं बोलना चाहिये।

भीखनः—गौतम जी चार ज्ञान के धारी १४ पूर्व के पाठी आनन्द गाथापति के घर चूक गये थे, तो भगवान् भी इसी प्रकार चूक गये होंगे।

रूपचन्दः—गौतम जी चूकने के समय भी चार ज्ञान के धारी थे, यदि इस बात का मूल प्रमाण है तो दिखलाइये।

भीखनः—इस का तो कोई मूल प्रमाण नहीं है।

रूपचन्दः—बिना प्रमाण के तो यह बात मानी नहीं जा सकती।

भीखनः—अच्छा फिर भी भगवान् ने गोशाले जैसे—निन्हव को बचाकर दोष सेवन किया। अवश्य किया।

रूपचन्दः—अगर हठ ही करना हो तो उसका कोई उपचार नहीं। क्योंकि मूर्खों के लिये बेशर्मी और समझदारों के लिये प्रमाण होता है। देखिये मूलपाठः—

कषाय कुसीलेपुच्छा ? गोयमा ! णो पडिसेविए होज्जा, अपडिसेविए होज्जा। (भगवती सूत्र)

अर्थः—वीतराग, छद्मस्थ कषाय कुशील निर्ग्रन्थ होते हैं, अतः

वे मूल गुण पांच महाव्रत और उत्तर गुण दशविध प्रत्याख्यान में कोई भी दोष नहीं लगाते।

अगर अब भी संशय शेष है तो नितान्त अज्ञानता के सिवा और कुछ नहीं।

भीखन :—तो क्या भगवान् ने छद्मस्थ अवस्था में कदाचित् भी कषाय का सेवन नहीं किया ? अगर आपके पास ऐसा मूल पाठ है तो बतलाइये ?

रूपचन्द :—आचारांग सूत्र में स्पष्ट लिखा है कि भगवान् ने त्रयोदश वर्ष में किञ्चिन्मात्र भी प्रमाद सेवन नहीं किया। वह पाठ देखिये :—

ऐतहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसी यतेरस वासे।
राइं दियंपि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाति॥

(आचारांग सूत्र अ० ६, उ० २)

अर्थः—इस प्रकार विचरते हुए भगवान् महावीर तेरह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। (सर्वसमन्वय: १२ वर्ष ५ मास १५ दिन) इतने समय में भगवान् ने किंचिन्मात्र भी प्रमाद सेवन नहीं किया, अहोरात्र सदैव यत्ना युक्त समाधि द्वारा ध्यान मग्न रहे।

दूसरा पाठ जिसमें बताया गया है कि भगवान् ने छद्मस्थ अवस्था में स्वल्प भी पाप नहीं किया वह इस प्रकार है :—

"णच्चाणं से महावीरेणो चिय पावगं संयम कासी।
अन्ने हिं वाकारित्था करन्तं वि नाणु जाणित्था॥

(आचारांग सूत्र अ० ६ उ० ४)

अर्थ :—भगवान् महावीर स्वामी ने संयम लेने पर न तो स्वयं पाप किया और न दूसरों से करवाया और न ही करते हुए को अच्छा जाना।

तीसरा पाठ जिसमें दिखाया गया है कि भगवान् ने छद्मस्थ अवस्था में कभी भी राग और द्वेष रूप प्रमाद का सेवन नहीं किया :—

अकसाई विगय गेहीय, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाई।
छउमत्थेऽवि परक्कम्ममाणो, नापमायं संयम विकुव्वित्था॥

[आचाराङ्ग सूत्र, अ० ६ उ० ४]

अर्थ :—भगवान् महावीर अकषायी थे। क्योंकि :—कषाय उदय होने से किसी पर भी अपनी भृकुटी टेढ़ी नहीं की। भगवान् महावीर ने अनुकूल शब्दों पर राग और प्रतिकूल शब्दों में द्वेष नहीं किया। बेशक भगवान् छद्मस्थ अवस्था में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से युक्त थे, किन्तु संयम लेकर उन्होंने एक बार भी प्रमाद और रागद्वेषादि कषाय का सेवन नहीं किया।

क्यों अब तो मानेंगे ? कि भगवान् ने कोई दोष सेवन नहीं किया और न ही भगवान् चूके।

भीखन :—(तमतमा कर) यह तो गणधरों ने गुण गाये हैं, अवगुण छिपा लिये हैं।

उसकी धृष्टता को देखकर रूपचन्द जी चौंक पड़े और बोले क्या तुम्हें ऐसे शब्द कहते लज्जा नहीं आती ? देखो न आचारांग सूत्र के आदि में सुधर्मा स्वामी कहते हैं :—

सुयं मे आउ-संतेणं भगवया एव मक्खाईं ॥

हे आयुष्मन् ? (जम्बु !) भगवान् ने जैसा कहा था वैसा ही मैंने उनसे सुना है। तथा इस नवमें अध्ययन की प्रतिज्ञा करते हुए सुधर्मा स्वामी कहते हैं :—

"अहा सुयं वइस्सामि"

"जैसा मैंने भगवान् से सुना है वैसे ही कहूँगा"

क्या अब भी आप सांप की लकीर को पीटते रहेंगे जो होना था सो हो लिया। गुरु के साथ हठ करना अच्छा नहीं होता। अगर आपका गुरु के साथ विरोध है तो धर्म के साथ तो नहीं है। हमें धर्म के विरुद्ध तो कुछ भी नहीं करना चाहिये। विशेष कर शासन नायक "जिनमें अणुमात्र भी राग द्वेष नहीं था उनमें भी हठ वश दोष साबित करना मोहनीय कर्म को बांधना है। हठ में आकर अमूल्य जीवन क्यों डुबो रहे हो। कुछ तो पक्षान्धता दूर करो, कुछ तो ठण्डे दिल, दिमाग से विचार करो ? इस प्रकार रूपचन्द जी ने भीखन जी को बहुत कुछ समझाया। पर हठी भीखन ने एक भी न मानी। जिस प्रकार ऊँट के चर्म से बने हुए कुप्पे में तुम कितना भी तेल क्यों न डालो, पर वह आगे से भी कठोर होता जायगा।

[यदि कोई कहे कि यह दोष तेल का है तो यह बात असत्य मानी जायगी, यतः—तेल तो लकड़ी को भी नर्म कर देता है। मगर उस चर्म का स्वभाव ही ऐसा है। उसमें तेल का आंशिक भी दोष नहीं] एवमेव यहां भी शास्त्रीय ज्ञान अथवा पढ़ाने वाले

गुरु का कोई दोष नहीं, यह तो उस उल्टी खोपड़ी वाले व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा था। जिस शाखा पर बैठना, उसी को काटना क्या समझदारी का लक्षण है। रूपचन्द जी ने सोचा कि:—यह पापात्मा अभी संसार-सागर से पार होने के लिये तैयार नहीं। इसने अभी संसार में ही गोते लगाने हैं। अतः मुझे किनारा करना चाहिये, अपने आचार्य श्री जी के पास चलकर शुद्ध भागवती दीक्षा लेनी चाहिये। रूपचन्द जी ने भीखन जी से स्पष्ट कह दिया कि भीखन! तेरी श्रद्धा ठीक नहीं, तेरा पंथ भगवान् से नितान्त विरुद्ध है अतः मैं तो तेरे पास रहना नहीं चाहता। भीखन जी ने भी विचार लिया:—कि अगर यह हमारे पास रहा तो अन्य साधुओं को भी बिगाड़ेगा। अतः उसे कह दिया कि:—अच्छा रूपचन्द! तेरी इच्छा। रूपचन्द जी वहां से चलकर गुरु जी के पास पहुंचे। दण्ड प्रायश्चित्त लिया और शुद्ध भागवती दीक्षा पालने लगे। दिल में विचार किया कि इस पाखण्डी के जाल में जितने भी भोले जन फँसेंगे, वे तो अपना इह लोक और परलोक बिगाड़ लेंगे। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि:—समाज को सावधान करदें। फिर रूपचन्द जी महाराज ने बड़े उत्साह से समाज में जागृति पैदा की। समाज के अन्धकार को दूर किया। आचार्य श्री ने समाज के सर्व साधु मुनिराजों के अभिमुख होकर घोषणा कर दी कि:—

"सर्व विद्वान् मुनिवरों का कर्तव्य है कि अशुद्ध श्रद्धाधारी भीखन से शास्त्रार्थ करें और शास्त्रप्रमाण दिखा २ कर उस के

जाल में फँसी हुई भोली जनता को उभारें। यह सब के लिये खुली आज्ञा है।"

तदनन्तर बहुत से मुनि-राजों ने भीखन के साथ शास्त्रार्थ किये, प्रायः प्रत्येक शास्त्रार्थ में इसकी जोरदार हार होती रही। तो भी यदि कोई व्यक्ति कह बैठता किः—आपको जब कोई उत्तर ही नहीं आता तो सत्य बात मान लेनी चाहिये। यह उसी समय उत्तर देताः किः—वेशक मेरी हार हुई है, इसमें मेरी बुद्धि का दोष है। किन्तु जो मैं कहता हूं वह सत्य कहता हूं। अतः मैं किसी की मानता भी नहीं हूं। बस जो मैं कहता हूं वह ही ठीक है। उसे दूसरे मुनिराज कहते कि भाई! शास्त्र पुकार २ कर कह रहे हैं किः—भगवान् नहीं चूके, न ही उन्होंने कोई प्रमाद (दोष) सेवन किया तो तुम कैसे भगवान् को दोषी ठहरा सकते हो।

वह कह देता कि मैं तो कहूंगा, शास्त्र में लिखा हो या न हो। भगवान् ने दोष सेवन किया पाप किया, कहूंगा, बार २ कहूंगा। मुनिराजों ने सोचा कि ऐसे मूर्ख का क्या उपचार है, अगर है भी तो हमारे पास नहीं, इसका उपचार तो गवर्नमेन्ट के पास है। वह तो ऐसे पागलों को ठीक कर ही देती है।

नोट–विस्तार भय से भीखन का संक्षिप्त ही परिचय लिख दिया है। (फिर कभी)।

——:*:——

"भगवान् के सच्चे साधुओं के लिये तेरह पन्थ के आचार्यों के कहे हुए"

"मीठे शब्द"

भीखनः—मुझे झूठे गुरु मिले, गधे, घोड़े, गलियार जैसेः—पाखण्डी, अविनीत, बाईसटोला के सब साधु असाधु हैं। अनाचारी, कदाग्रही।

कविताः—मुखपत्ती बांधी ने मीठा बोले पिण जीभ बहे ज्यूं तीखी तरवार। जे इनमें शामिल हुआ ते सघला डूबा, तिण में शंका मत आण जी० ॥

जयाचार्य कथित मीठे शब्दः—मिथ्यादृष्टि, भेषधारी, अन्धे, कुगुरु, कुत्ते, बगुले, काग सरीखा, बेशर्म, दोनों फूट गई, पत्थर, थोथे चणे, गर्जनेवाले बादल, उन्दुरा (चूहे) सारे ही सांगधारी, मुंह बिगड़े, अमकटिया, (गठकतरे) इनमें साधु पणो अंश नहीं, नीच, भंगी, महानिन्दक, ऊन्धीमति, गवांर ऊंठ जैसे खोरी, सांप जैसे जहरी, वैरी, श्रावक कर दिये गरक, बावीसटोला पोपाबाई का राज है, सब श्रावक और श्राविकाओं को अन्धे कर दिया है, मिथ्यात्व प्रचारक, फन्दी, इन अन्धा ने मूल सूझे नहीं, असंयती, अव्रती, ऊन्धेः—

(कविता)—

वुटकेन, गधे, मोम, वलदनेरे लाल, मरायो कुबुद्धि सिखाय।
ज्यूं अविनीतरी संगत किया रे लाल, भवभव में दुःख पाय ॥

ये हैं तेरापंथी आचार्य के मधुर शब्द, जिनका दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है। इस पर से इनकी भाषा सुमति का भली भाँति पता चल जाता है॥

पुजेरे सज्जनों के लिये तेरापन्थी आचार्यका—

"प्यारा प्रसाद"

मूढ मिथ्याती मनोमोहिया-थापे हिंसा धर्म।
वान्दे निर्गुण देवगुरु ते भूल्या अज्ञानी मर्म ॥१॥
इम कही विरुद्ध परू पता नहीं आणे मन में लाज।
देवल प्रतिमा कारणै करै अनेक अकाज ॥२॥

हिंसा धर्मी, मन्द बुद्धि, अन्दरली आंख फूट गई, अन्धे, मूर्ख, डूबे, मोटी पोल, प्रत्यक्ष पाखण्डी, जिन प्रतिमा थापेकरि पेट भराई, इन हिंसा धर्मियों का संग न करो, मोह मिथ्याती।

जैनतत्व प्रकाश २ भाग उपरिनिर्दिष्ट "मीठे शब्द" भीखन निर्मित्त "जैनतत्व प्रकाश" और जयाचार्य रचित "भिक्षु जश रसायण" और "प्यारा प्रसाद" जैनतत्त्व प्रकाश "भाग दूसरा पृष्ठ १६२" नाम की पुस्तकों में देखे गये हैं। उन्हें उसी तरह यहां लिख दिया है। जिसे शंका हो उसे पुस्तक निकाल कर देख लेना चाहिये। हां, मैं पाठकों से यह तो अवश्य कहूंगा कि शास्त्र के अनुसार चलने का दावा करने वालों की सभ्यता पर, शिष्टता

पर और साधुता पर ज़रा गहरा ध्यान देकर सोचें तो सही कि— कैसे द्वेष की आग एक २ पद से टपक रही है। और इनकी साधुता राग द्वेष की चिता में जल रही है। अभी तो ये कहते हैं कि साधु ने राग द्वेष करना नहीं। और हम किसी पर भी राग द्वेष करते नहीं। यह राग द्वेष रहित वीत राग संयमियों का हाल है। भाषा सुमति का कितना विवेक है ? कितना उज्ज्वल आदर्श ? और कितने मधुर शब्द ?

आज के युग में जहां राष्ट्रीयता पनप रही है, संसार कुछ न कुछ आध्यात्मिकता की तरफ अग्रसर होता जा रहा है, मानवता विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती जा रही है—अहिंसा के झण्डे का पुनरुत्थान हुआ चाहता है वहां तेरापंथ धार्मिक उन्नति के विकास में बाधक चट्टान की तरह बनता जा रहा है। धर्म पर कलङ्क साबित होता जा रहा है। पन्थियो ! अब तुम्हें होश में आ जाना चाहिये। अब तो समय है। समय व्यतीत हो जाने पर पछताना पड़ेगा।

"थोथी कल्पना"

(अर्थात्ः—काल्पनिक धर्म के दो भेद)

जैन-धर्म और "१८१७" में उत्पन्न तेरापंथ में धार्मिक, सैद्धान्तिक और सांस्कृतिक गहरा मतभेद है। जैन धर्म और तेरापंथ को एक मानने वाले बड़ी भूल करते हैं। इनको एक कह देना सत्य का गला घोंट देना है। तेरा पन्थ ने आकर सुसंगठित जैन समाज को इस तरह छिन्न-भिन्न किया है जिसे मिलाना कठिन ही नहीं, असम्भव सा हो गया है। जिस मनुष्य ने हमारी आत्मा पर ही आघात करना प्रारम्भ कर दिया हो, उस मनुष्य से हमारा सम्बन्ध कैसे स्थापित हो सकता है। धर्म हमारी आत्मा है, उन्होंने धर्म को अधर्म रूप में परिणत कर दिया है। तेरापन्थियों के कल्पित धर्म के दो भेद और जैन शास्त्र प्रतिपादित धर्म के दो भेद नितान्त भिन्न २ हैं। जैसा कि वह अपने मूल ग्रंथ "भ्रम विध्वंसन" में पहले पृष्ठ पर लिखते हैं :—

"ते धर्मरा दो भेद संवर और निर्जरा ए बिहुं भेदाँ में जिन आज्ञा छै। ए संवर और निर्जरा बेहु इ धर्म छै" ए संवर और निर्जरा टाल अनेरा धर्म नहीं छै"॥

सारांश यह है कि:—धर्म के दो भेद हैं, संवर और निर्जरा। इन्हीं धर्म के दो भेदों में जिन आज्ञा है। इन दो भेदों को छोड़

कर धर्म का और कोई भेद नहीं है। उससे आगे चलकर दश वैकालिक सूत्र की पहली गाथा का उदाहरण देकर सिद्ध करने की चेष्टा भी की है। पाठक देखें कि गाथा में कहीं धर्म के भेद भी कहे हैं :—

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ॥
देवाऽवितं नमंसन्ति अस्स धम्मे सयामणो ॥

अर्थ :—धर्म मंगलः—अर्थात् कल्याण का दाता और उत्कृष्ट योनि :—सब वस्तुओं में प्रधान है। वह धर्म अहिंसा, संयम और तपः स्वरूप है। धर्म में जिसका मन सदा लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

शास्त्र की इस गाथा के द्वारा तेरापंथी संवर और निर्जरा धर्म के दो भेद सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु इस गाथा में धर्म का परम आनन्ददायक अलौकिक रूप समझाया गया है। न कि धर्म के दो भेद बताए गए हैं।

प्राचीन और नवीन सभी टीकाकारों ने उक्त गाथा का वही अर्थ किया है जिस का ऊपर उल्लेख किया है, परन्तु किसी ने भी उक्त गाथा आधार लेकर यह नहीं कहा कि:—संवर और निर्जरा यह धर्म के दो भेद हैं। ऐसा अर्थ करना तो बुद्धि के पीछे लाठी लेकर चलना है। इसके अतिरिक्त ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल, चार छेद और एक आवश्यक इन ३२ सूत्रों में कहीं पर भी इस प्रकार धर्म के दो भेद नहीं किये।

भगवान् ने धर्म के दो भेद बताए हैं, देखिये—

"दुविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा, सुयधम्मे चेव चारित्त धम्मे चेव ॥"

(ठाणाङ्गसूत्र, ठाणा दूसरा)

अर्थः—धर्म के दो भेद होते हैं:—श्रुत धर्म और चरित्र धर्म। तथा ठाणांग सूत्र के दशवें ठाणे में दश प्रकार के धर्मों में भी श्रुत धर्म और चारित्र धर्म का ही ग्रहण किया है। वह पाठ इस प्रकार है :—

दशविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा:—गामधम्मे, नगरधम्मे, रट्ठ-धम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चारित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे। (ठाणांगसूत्र ठाणा १०)

अर्थः—दश प्रकार के धर्म होते हैं। (१) ग्राम धर्म (२)नगर धर्म (३) राष्ट्र धर्म (४) पाखण्ड धर्म (५) कुल धर्म (६) गण धर्म (७) संघ धर्म (८) श्रुत धर्म (९) चरित्र धर्म (१०) अस्ति काय धर्म ठाणांग सूत्र में जो दश प्रकार के स्थविरों का वर्णन आता है उनमें भी श्रुत स्थविर (समवायाङ्गादि सूत्रों का ज्ञाता) और चारित्रस्थविर (बीस वर्ष का संयमी) का ही ग्रहण किया गया है। सँवरधर्म और निर्जराधर्म का उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया। हां, तेरापंथी अगर कुछ भी बुद्धि का परिचय देते तो ऐसा सफेद झूठ बोलने का साहस कभी न करते। जबकि वे स्वयं "भ्रमविध्वसन" के पृष्ठ दो पर भगवती सूत्र का मूल पाठ देकर धर्मी पुरुषों का विवेचन करते हुए लिखते हैं:—संसार में चार

प्रकार के पुरुष होते हैं:—"एवं खलु मए चत्तारि पुरिस जाया पएणत्ता संजहाः—सील सम्पएणे नामं एगे नो सुय सम्पएणे। सुय सम्पएणे नामं एगे नो सील सम्पएणे। एगे सील सम्पएणे वि सुय सम्पएणे वि। एगे नो सील सम्पएणे नो सुय सम्पणे॥

(भगवती सूत्र)

अर्थः—इस पाठ में चार प्रकार के पुरुषों का वर्णन किया गया है।

(१) संसार में कुछ मनुष्य केवल श्रुत सम्पन्न ही होते हैं चारित्रवान् नहीं होते।

(२) कुछ चारित्र सम्पन्न तो होते हैं पर श्रुतवान् नहीं होते।

(३) कुछ मनुष्य श्रुतधर्म और चारित्र धर्म दोनों से ही युक्त होते हैं।

(४) कुछ न ज्ञानवान् और न ही चारित्रवान् अर्थात् दोनों से ही खाली होते हैं। लिखने का आशय यह है किः—जहां पर भी धर्म और धर्मियों का वर्णन आया है, वहां पर श्रुत धर्म और चारित्र धर्म का ही नाम लिया गया है। संवर और निर्जरा का नहीं। अगर संवर और निर्जरा ही धर्म के दो भेद होते तो यहां पर भी संवर सम्पन्न और निर्जरा सम्पन्न, ऐसा ही पाठ आना चाहिये था। परन्तु ऐसा पाठ कहीं पर भी नहीं आया। बिना प्रमाण की बात अप्रामाणिक और असत्य मानी जाती है।

दूसरी बात यह है:—अगर सर्व प्रकार की निर्जरा को धर्म

मान लिया जाय और भगवान् की आज्ञा में स्वीकार कर लिया जाय तो चौरासी लाख योनि के जीव अकाम निर्जरा सर्वदा करते रहते हैं। तो वे सब धर्मी हुए। मिथ्या दृष्टियों का तो संसार से एक दम किनारा हो गया। शोक है ऐसे मूढ़ मतियों पर जो दिमाग का दिवाला निकाल बैठे हैं। हठ बुरी बला है। दुर्योधन का हठ नहीं तो और क्या था। गोशाले की जिद्दबाजी नहीं तो और क्या थी। किन्तु इनका दिवाला निकलते संसार ने देखा है। आगे भी संसार ऐसे हठियों का दिवाला निकलते देखेगा। देख रहा है। देखने से हमें शिक्षा मिलती है। किन्तु हठी इस से भी हठ का ही ग्रहण करता है। वह उसकी अन्तिम दर्दनाक दुरवस्था की तरफ दृष्टि डालकर नहीं देखता। वह अपनी बातों को पूरी करने में शास्त्रों के अर्थों को अनर्थ बनाने में भी किञ्चिन्मात्र नहीं झिझकता !

जो व्यक्ति मनुष्य देह, आर्य देश, शुद्ध कुल, सद्गुरुओं की संगति पाकर तथा उनके पवित्र दयामय उपदेश सुनकर भी अपने अनर्थकारी हठ को न छोड़ सके, अर्थों के अनर्थ बनाने में न झिझके, उसे समझाना कोई सरल काम नहीं होता। हमारा धार्मिक सम्बन्ध तोड़ कर तेरापंथ ने एक गहरी खाई खोदली है, जिसे भरना असम्भव सा प्रतीत होता है। उसने संवर और निर्जरा रूप धर्म के दो भेद न जाने किस प्रमाण को लेकर कल्पित किये हैं। क्योंकि:—संवर और निर्जरा:—कर्मों को आने से रोकना और एकत्रित कर्मों को जर्जरित कर नष्ट कर देना ही जिनका

काम है, इनका आर्हत प्ररूपित श्रुतधर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। आर्हत प्ररूपित धर्म के सामने एक अज्ञानी मनुष्य की थोथी कल्पना कभी मान्य नहीं हो सकती। पाठक समझ ही गये होंगे कि तेरापंथ और जैन धर्म में कितना गहरा धार्मिक मत भेद है। अगर अब भी तेरापंथ अपने आप को जैन कहने का दावा करता है तो समझना चाहिये कि वह जैन समाज के साथ और धर्म के साथ धोका करता है। आँखों में धूलि झोंक रहा है। जिसका फल कभी भी हितकर नहीं हो सकता।

"महा पाप"

(अर्थात् :—दान का द्वार बन्द करने की आज्ञा)

तेरा-पन्थियों के सारे के सारे सिद्धान्त ऐसे कारागार के गढ़े हैं। जहां जैन शास्त्र रूपी सूर्य का किञ्चित् भी प्रकाश नहीं पड़ता। तथा पंथ निर्माता की खोपड़ी को अपने पंथ का भूत भी बड़ी बुरी तरह से चिमड़ा हुआ प्रतीत होता है। वह नियम बनाते समय झूठ कपट और अनर्थ का ध्यान तक नहीं रखता। क्या वह सर्वथा स्वार्थान्ध पुरुष था ? यदि ऐसा ही है तो ठीक है, स्वार्थान्ध पुरुष को धर्मार्थ और परमार्थ कुछ भी सूझा नहीं करता, वहां तो स्वार्थ ही चक्र काटा करता है :—"दुनिया है और मतलब, मतलब है और अपना", क्योंकि :—ऐसे पापमय नियम को संसार का एक भी सद् व्यक्ति मानने को तैयार नहीं हो सकता। दान के विषय में तो उनकी विचित्र ही कल्पना है। वह कहते हैं :—कि साधु के सिवा संसार के सब प्राणी कुपात्र हैं। कुपात्र को दान देना महा पाप है जैसे कि :—

"साधु थी अनेरा तो कुपात्र छै, कुपात्र दान—मांसादि सेवन, व्यसन कुशीलादिक ये तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं। जैसे कि :—चोर, जार, ठग, ये तीनों एक समान व्यवसायी हैं।

(भ्रम विध्वंसन, पृ० ७६)

पाठक गण ! अब जरा साधु की बात भी समझ लें, कि :— साधु कौन है ? जो तेरा-पंथी साइन बोर्ड को लगाये फिरता हो। तेरापंथी साधु के सिवा सब साधु असाधु हैं। प्रमाण देखिये :—देव गुरु धर्म की ओलखना, और शिशुहित शिक्षा, नामक तेरा पन्थियों की मान्य पुस्तक में :—

"तेरा पंथ में प्रवर्तते गुरु (साधु) जाणवा"

(शिशु हित शिक्षा, भाग १, पृ० १४)

इस पाठ से स्पष्ट विदित हो गया कि :—संसार में, यदि कोई साधु है तो वह तेरा पंथी ही है और कोई नहीं। साधुओं ! होशियार !! अब तो साधुता के सींग तेरा पंथियों के शिरों पर लगेंगे जिनसे पता लगता रहेगा कि जिसके शिर पर साधुता के सींग चमकते होंगे वही साधु होगा। कितनी संकीर्णता है। साधुता के नाम पर कितना कलङ्क है। कहां साधुता और कहां पंथ का भेष। मालूम पड़ता है कि तेरापंथियों ने साधुता को अपने पंथ के भेष में कैद कर लिया है। अरे समझदारो ! साधुता तो आत्मा के स्वभाव विशेष का नाम है भेष एक कल्पित चिह्न का नाम है, चिन्ह को धर्म मानना अथवा केवल चिह्न मात्र के धारण करने से साधु मान लेना कितनी मूर्खता है ? और फिर साधु के सिवा सब कुपात्र हैं ऐसा कह देना किस शास्त्रानुसार ? संसार के समस्त प्राणियों को (साधु के सिवा) दान देना महा पाप बताना किस सूत्रानुसार ?

भीखन जी फरमाते हैं :—

"साधु बिना अनेरा सर्वने दान नहीं दे माठो जाणरे !
दीधां भ्रमण करे संसार में, तिणस्यू साध किया पचखाणरे" ॥

(जैन तत्त्व प्रकाश, पृ० १८१)

अर्थात् :—साधु के बिना सब प्राणी कुपात्र हैं, उनको दान देना एकान्त पाप है। साधु को छोड़ कर जो कोई दाता अन्य को दान देता है, वह संसार में भ्रमण करता है। इसलिये ही साधु ने दान देने का पच्चक्खाण (त्याग) किया है।

देखिये! साधु के नाम पर कितना अत्याचार किया जा रहा है, धर्म की ओट में विषाक्त बाण कस २ कर चलाए जा रहे हैं। साधु के सिवा सब कुपात्र, साधु वह जो तेरापंथ के प्रवर्ते, क्योंकि अगर "जो निर्ग्रन्थ पंथ में प्रवर्ते उसे साधु कहना" ऐसे कहते तो सच्चे श्रमण निर्ग्रन्थों का भी ग्रहण हो जाता। अगर उनके पेट में भी रोटी गई तो तेरा-पंथियों के पेट में दर्द हो जाता अतः भगवान् के सब सच्चे साधुओं को कुपात्र ठहराया। कुपात्र को दान देना मांस भक्षण के समान पाप करना है। यदि कोई साधु के बिना अन्य को दान देता है तो वह संसार में भ्रमण करता है। साथ में प्रमाण देते हैं :—कि अन्य प्राणी को दान देना एकान्त पाप है तभी तो साधु ने दान देने का पच्चक्खाण किया है। पाठकगण! अब इन बातों की सत्यता परखते चलियेगा :—

तीर्थङ्कर भगवान् दीक्षा काल से एक वर्ष पहले वर्षी दान देते हैं। उनका दान भी बड़ा प्रचुर होता है, प्रति दिन १०८०००००

एक करोड़ अस्सी लाख। सुनइयों (पौंडों) का दान तीर्थङ्कर देव अपने हाथों से करते हैं। सुनइयों का दान साधु तो लेते नहीं, क्योंकिः— वे धन के त्यागी होते हैं। अब लेने वाले सब कुपात्र ही हुए न। कुपात्रदान मांसादि सेवन जैसा महापाप है। तो तीन ज्ञान के धारक तीर्थङ्कर देव प्रतिदिन कितना बड़ा पाप का गट्ठड़ शिर पर धरते होंगे। जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है। कितनी निर्विवेकता है? जो तीर्थङ्करदेव एकेन्द्रियादि स्थावरों की भी हिंसा करने से बचाते हैं। गृहस्थ में ही सचित्त जल का (दीक्षा से पहले) जो त्याग कर देते हैं। भला वह मांसादि सेवन जैसा महापाप कैसे कर सकते हैं? तीन ज्ञान के धारक भगवान् से भी ऐसी ही आशा करना तेरापंथियों जैसे समझदारों का ही काम हो सकता है। देखिये दीक्षा से पूर्व भगवान् की संसार विरक्तिः—

"अवि साहिए दुवासे सीतोदं अभोच्चा णिक्खन्ते।
एगत्तगए पिहि यच्चे से अहिन्नाय दंसणे संते॥

(आचाराङ्ग सूत्र, श्रु० १, अ० ६.१, गा० ११)

अर्थ—भगवान् ने दीक्षा से दो वर्ष पहले ही सचित्त जल का पीना छोड़ दिया था। यों ही दो वर्ष एकत्वभावी हो कषाय-रूप अग्नि को शान्त करके सम्यक्त्व भाव से आत्मा को भावते— दीक्षित हुए थे।

भगवान् महावीर जब सचित्त जल तक का प्रतिबन्ध रखते थे, तो मांसादि सेवन जैसा महा पाप कैसे कर लेते होंगे? हमारी

समझ में तो यह बात आती नहीं। हां हो सकता है कि:—तेरा-पंथियों की समझ में आगई हो। अगर ऐसा ही है तो हम आशा रखते हैं कि वे हमें भी समझाने का कष्ट करेंगे? दूसरी बात:—"करे संसार भ्रमण" अर्थात्:—जो कुपात्र को दान देता है उसे संसार भ्रमण करना पड़ता है। देखिये:—प्रत्येक तीर्थङ्कर वर्षी दान देते हैं, परन्तु संसार में कोई तीर्थङ्कर नहीं रुलता। हां यहां तुम अपने कौशल से उट्टङ्कना अवश्य उठा मारते हो, उसे भी समझने से सत्यता का पता लग सकता है "उट्टङ्कना:"—भगवान् महावीर ने जो साढे बारह वर्ष उग्र तप किया वह कुपात्र दान का फल भुगतने के लिये ही तो किया था" उत्तर:—भगवान् मल्लिनाथ तथा, नेमनाथ जी ने भी वर्षी दान दिया था, किन्तु उन्हें तो दीक्षा लेते ही केवल ज्ञान और केवल दर्शन हो गया था। उन्हें वह मांसादि सेवन जैसा कुपात्र दान का कुफल न जाने क्यों नहीं भोगना पड़ा।

अब तेरा-पंथियों की विचित्र बुद्धि का जरा नमूना देखिये:—जब तेरा-पंथियों को कुछ सूझा नहीं करता तो उनकी जड बुद्धि "टाँय टाँय फिस" करने लग जाया करती है और तेरा-पंथी "संसार खाता" "संसारी उपकार" "संसारी धर्म" आदि रजिस्टर्ड शब्द कह कर पीछा छुड़ाया करते हैं। जैसे कि:—तीर्थङ्करों ने यह तो संसारी उपकार, अथवा प्रचलित रीति का पालन किया है। इसमें धर्म का क्या प्रश्न? ठीक! उन्होंने रीति का पालन किया है, तो हम पूछते हैं:—कि यह उपकार अथवा रीति अच्छी

है या बुरी? अगर बुरी है तो उसका फल भी बुरा होगा, जिसका अर्थ है पाप। अगर अच्छी है तो उसका फल भी अच्छा होगा, अर्थात् पुण्य। अब आप बताएँ कि—अगर वह रीति बुरी है तो तीर्थङ्कर देव बुरी रीति का अनुसरण ही क्यों करते हैं। क्योंकि:—उनका जन्म केवल कुरीतियों को दूर करने के लिये ही होता है, वे समाज में आई हुई कुरीतियों को दूर कर धर्म रीति स्थापना करते हैं। इसीलिये इन्द्रदेव भगवान् को "आदि-गराणं" कह कर स्तुति करते हैं। तो ऐसे समय में जबकि:—वह शान्त दान्त संयमी बन कर सांसारिक कार्यकलाप को तिला-ञ्जलि ही दे देते हैं, उस समय उन्हें मांसादि सेवन जैसी पाप-मयी रीति के पालने की आवश्यकता ही क्या है। यदि उस रीति से पुन्योपार्जन होता है तो उसमें पाप कैसे ठहराते हो। भगवान् ने ठाणांग सूत्र के नवमें ठाणे में पुण्योपार्जन के नव प्रकार बताये हैं "नव विहे पुण्णे पण्णत्ते तंजहा:—अन्न पुण्णे, पाण-पुण्णे, लेण पुण्णे, सयण पुण्णे, वत्थ पुण्णे, मन पुण्णे, वय पुण्णे, कायपुण्णे, नमोक्कार पुण्णे॥ (ठाणांग सूत्र, ठाणा ६) अर्थ:—पुण्योपार्जन के नौ प्रकार भेद कहे हैं:—जैसे—अन्न के देने से, जल के देने से, घर मकान देने से, शय्यासंथारा आसनादि का दान देने से, वस्त्र दान देने से, गुणज्ञ पुरुष पर प्रसन्न होने से, (मन से हित चिन्तन करने से) वचन से गुणी की प्रशंसा करने से, (हितकर उपदेश देने से) गुणी पुरुष को नमस्कार करने से।

तेरा पंथियों की मान्यताऽनुसार संसार का जो प्राणी पुण्योपार्जन करना चाहता है, उसे ये वस्तुएं तेरा पंथी साधु को देनी चाहिये, नहीं तो पुण्य पैदा नहीं हो सकता। कितना पुण्य का सीमित क्षेत्र बनाया है। कहां तो सर्वज्ञ भाषित व्यापक वचन जो कि समष्टि रूप में संसार के प्राणि मात्र पर लागू होते हैं। वह एक स्वार्थ पूर्ति के कारखाने बना डाले हैं। भगवान् ने जो सुनइयों का दान दिया है, वह पाप नहीं, संसारी उपकार मात्र नहीं, वह तो पुण्योपार्जन की प्रणाली है। शंकावादी कह सकता है कि:—सुनइयों का दान तो किसी पुण्य में नहीं आया, अतः सुनइयों का दान पुण्य नहीं हो सकता।

उत्तरः—ठीक है:—किन्तु किसी समय पका हुआ भोजन देना उपयुक्त नहीं होता तो गरीबों को आटा आदि भी बांट दिया जाता है, और उसे भी पुण्योत्पादक ही माना जाता है। उसी तरह सुनइयों का दान भी अन्न वस्त्र आदि का ही दान माना जाता है। क्योंकि:— सुनइयों से लोग अन्न और वस्त्र आदि ही लेते हैं। अतः वे भी पुण्योत्पादक ही हैं।

अब आप दूसरी तरफ आइयेः—यदि साधु के बिना अन्य को दान देने में एकान्त पाप है, तो दशवैकालिक सूत्र में अन्य को दिये जाने वाले दान को पुण्यार्थ क्यों कहा—

"असणं पाणगं वाऽवि, खाइमं साइमं तहा।
ज जाणिज्जा सुणिज्जा वा, पुणट्ठा यगड़ं इमं॥"

(दशवैकालिक सूत्र)

भिक्षाचरी के निमित्त गया हुआ साधु यदि यह समझे—अथवा किसी से सुने कि:—यह अशनादिक पुण्यार्थ बनाया गया है तो साधु (जैन मुनि) उसे अपने लिये अकल्पनीय समझे, अर्थात्:—उस पुण्यार्थ निर्मित अन्न जलादि को ग्रहण न करे।

इस गाथा में साधु से इतर को देने के लिये बनाए हुए अन्न को पुण्यार्थ कहा गया है। साधु के सिवा अन्य को दान देने में एकान्त पाप कहना अज्ञान का परिणाम है। अगला पाठ देखिये:-

"दाणट्ठयाए, पुण्णपगट्ठम्"

(प्रश्न व्याकरण सूत्र अमोलकऋषि कर्षिजीकृत पृ० २०७)

अर्थ:—दान देने के लिये जो अन्नादिक तैयार किया जाता है, अथवा पुण्य के निमित्त जो अन्नोदक बनाया जाता है उस भोजन को साधु न ग्रहण करे।

अगर अब भी तेरापंथी साधु के सिवा अन्य को दान देने में पाप कहेंगे तो समझना चाहिये कि :—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय हुआ है।

तीसरी बात :—अन्य को दान देने में एकान्त पाप होता है, अतएव साधु ने दान देने का पचक खाण किया है। कितनी झूठी मान्यता है। यह तो बात आप जानते ही हैं :—कि साधु का परिग्रह का तो त्याग होता है। अतः जब उसका किसी वस्तु का दान देने में अधिकार ही नहीं? तो उसके विषय में प्रश्न करना कि साधु ने दान देने का त्याग पाप समझ कर ही

किया है—कितना असत्य है। हो सकता है :—कि तेरापंथी साधु ऐसा नियम करते होंगे पर भगवान् महावीर का सच्चा साधु तो ऐसा पापमय नियम कभी नहीं कर सकता। सच्चा साधु तो समय आने पर संकटग्रस्त भिक्षु सन्यासियों को दाता के कहने पर अन्न दे सकता है :—देखिये मूल पाठ :—

"सेपरो अणावाय मंसलोए, चिट्ठे माणस्स असणं पाणं खाइमं वा साइमं आहट्टू दलएज्जा। सेवं वदेज्जा "आऊ—सन्तो ! समणा निसिट्ठे। तं भुंजह चणं परिभाएह चणं" तं चे गतिओ पडिगाहेत्ता तुसिणीओ ओहेज्जा, "अवियावइ एयं मम मेव सिया" एवं माइट्ठाणं संफासे। णों एवं करेज्जा। से त्तमायाए तत्थ गच्छेज्जा (२) से पुव्वा मेव आलोएज्जा "आऊ संतो ! समणा ! इमं भो असणे वा (४) सव्व जणाए निसिट्ठे। तं भुंजह चणं परिभाएह चणं" सेवं वंदत्तं परो वएज्जा। "आऊ सतो ! समणा ! "तुमं चेवणं परिभाएहि" सेतत्थ परिभाए माणे णो अप्पणो खद्धं २ डायं २ ऊसडं २ रसियं २ मणुन्नं २ णिद्धं २ लुक्खं २ से तत्थ अमुच्छिते अगिद्धे अगढिए अण ज्मोववण्णे बहु सममेव परिभाएज्जा सेणं परिभाएमाणं परो वदेज्जा। आऊ संतो ! समणा ! माणं तुमं परिभा एहि सव्वे वेगतिया भोक्खामो णो अप्पणो खद्धं खद्धं जावलुक्खं-लुक्खं से तत्थ अमुच्छिए बहु सममेव भुंज्जेज्जा वा परिएज्जावा।

(आचाराङ्ग सूत्र)

अर्थ :—एकान्त स्थान में खड़े हुए श्रमण निग्रन्थ को देख

कर दाता कहे कि महाराज ! यह अशनादिक चारों प्रकार का आहार जो मैं आपको देता हूं यह सब आहार मेरे घर में खड़े भिक्षु संन्यासी साधुओं का और आपका इकट्ठा ही है। अब आप यह आहार सब इकट्ठे ही खालो—अथवा परस्पर सबको विभक्त करदो, यह आपकी इच्छा है। ऐसा वचन सुनकर यदि श्रमणनिर्ग्रन्थ मौनस्थ पने ऐसा विचार करे "कि यह आहार तो केवल मेरा पेट ही भर सकता है" तो ऐसा विचार करने वाला साधु माया (कपट) के पापका भागी होता है, इसलिए साधु ऐसा विचार न करे। किन्तु गृहस्थी के दिये हुए आहार को लेकर दूसरे भिक्षु संन्यासियों के पास जाकर कहे कि:— अयि आयुष्मन् ! भिक्षुवर्ग ! यह आहार हम सब के लिये मिला है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो एकत्र मिलकर खायें। अगर ऐसी इच्छा न हो तो विभाग करके खाएं। यदि यह बात सुनकर उनमें से कोई साधु कहे कि:—भाई ! श्रमण ! तुम ही अपने हाथ से विभाग करदो। तो श्रमण निर्ग्रन्थ सबका समान विभाग करता हुआ अपने लिये अधिक २ अच्छा २ सरस २ लूखा २ रखे नहीं। अपितु सर्वथा लोलुपता रहित सम विभाग करे। यदि सम विभाग करते समय कोई संन्यासी ऐसा कहे कि अहो ! मुने ! तुम विभाग मत करो। हम सब आपके साथ इकट्ठे बैठकर भोजन करेंगे तो श्रमण निर्ग्रन्थ उन सबके साथ भोजन करता हुआ— अपने लिये अच्छा २ सरस २ आहार निकाल कर न खावे। अपितु समतापूर्वक शान्त होकर उनके साथ भोजन करे।

पुण्यफल की प्राप्ति हो सकती है। अन्य को देने से नहीं, उससे तो देय वस्तु का ही नाश समझना चाहिये। अतएव हम सुपात्र-दान को धर्मोत्पादक मानते हैं, अन्य को नहीं ?

उत्तर :—ठीक है आप सच्चे साधु के सिवा अन्य को दान देने का फल एकान्त पाप मानते हो, किन्तु आपको समझ लेना चाहिये कि :—जैन धर्म अनेकान्तात्मकवाद को मानता है, वह एकान्तवादी नहीं है। वस्तुतः तो संसार का प्रत्येक तत्त्व अनेकान्त में विश्राम करता है, जैसे कि :—बीज एक प्रकार का नहीं होता, उसी तरह उसका उत्पत्तिस्थान (भूमि) भी एक प्रकार का नहीं होता, भिन्न २ प्रकार के बीज और भिन्न २ प्रकार के पृथिवीस्थल हैं। धान्य की उपजाऊ भूमि में हम बाजरा और अच्छे चणे नहीं पैदा कर सकते। इसी प्रकार पुण्य पैदा करने के लिये दीन-अनाथ-असहाय भिखमंगों आदि को अन्न वस्त्र आदि का दान करना चाहिये। और निर्जरा पैदा करने के लिये स्वधर्मी और पांचमहाव्रतधारी साधु को दान देना चाहिये। परन्तु पांच महाव्रतधारी साधु को अनुकम्पा के भाव से नहीं, गुरु बुद्धि से दान दिया जाता है। क्योंकि :—साधु तो सर्व जीवों का रक्षक है। साधु का यह उपदेश कभी नहीं हो सकता कि पांच महाव्रतधारी साधु के सिवा अन्य किसी को भी दान नहीं देना चाहिये। तेरापंथी इसे स्पष्ट न कहकर जरा उलटफेर करके कह देते हैं। जैसे कि :—साधु के सिवा अन्य को दान देना एकान्त पाप-कर्म है, श्रावक के लिये पाप-कर्म नहीं करना चाहिये।

परन्तु भगवान् ने फरमाया है कि :—जो पुरुष अन्य को दान देने का निषेध करता है वह महा मोहनीय कर्म का बन्ध होता है। वह पाठ :—

"वित्तिच्छेयं करेय" "मादेहकिंचिदाणं"

(प्रश्न व्याकरण सूत्र)

अर्थ :—किसी की आजीविका को बुरे विचार से नष्ट करने वाला, और अमुक को दान मत दो, अथवा साधु के सिवा अन्य को दान देना एकान्त पाप होता है, ऐसा कहने वाला मनुष्य महामोहनीय कर्म को बांधता है। जैसे कि :—तेरापंथी साधु श्रावकों को नियम कराया करते हैं कि :—पांच महाव्रतधारी साधु के सिवा अन्य किसी भी मनुष्य को दानबुद्धि से दान नहीं देना, यदि अकस्मात् दिया भी जाय तो प्रायश्चित्त (पश्चात्ताप) करलेना नहीं तो पाप का यमदूत चिमड़ जायगा। जैसे कि :—

भेषधारी आया घर बाहर ए जेने शरमा शरमी देवे आहार ए पछे कर पश्चाताप ए तो थोड़ा लागे पाप ए।

तात्पर्य यह है कि :—तेरापंथी साधु अपने भक्तों को ऐसा उपदेश देते हैं कि यदि अन्यमतावलम्बी कोई भी साधु मकान पर आजावे तो उसे आहार देने में एकान्त पाप होता है। परन्तु यदि शरमा शरमी से आहार दिया भी जाय तो पीछे से पश्चात्ताप करे जिससे कि पाप थोड़ा लगे। यदि सारा पाप उतारना हो तो इस कड़ी को पढ़ना चाहिये :—

"जो छाती माथा लेवे कूट ए, तो पाप सिघलो जावे छूट ए। क्या यह निर्दयी भगवद्वचनानुसार मोहनीय कर्म नहीं बांधते होंगे ? सर्वज्ञ भाषित इस दान प्रतिपादक धर्म में ऐसे कठोर हृदय वाले लुब्धक मनुष्यों के लिये कोई स्थान नहीं है। भगवान् तो श्रमण ग्रन्थों को स्वयं आज्ञा देते हैं कि:—अगर नगर के सब द्वार, दरवाजे, बन्द हो गये हों और साधु, सन्यासी, ब्राह्मण आदि अन्य और भोजन के लिये तथा जल के लिये घूम न सकते हों तो जैनसाधु के कर्त्तव्य है कि:—उसके लिये राजा के पास जावे और उससे निवेदन करे कि:—भूपते! इनका (भिक्षुक, संन्यासी, ब्राह्मण आदि का) प्रबन्ध करो। जैसे:—"पंचहिं ठाड़ेहिं समणे निग्गन्थे रायन्ते उर मणुपविसमाणे नाइक्कम्मइ तं णगरे सिया सव्वओसमन्ता गुत्ता गुत्त द्वारे वहवे समण माहणा णो संचाए इ भत्ताए वा पाणाए वा निक्ख मित्तए वा—पविसित्तए वा तेसिं विण वणट्ठयाएरायन्ते उर मणु पविसिज्जा॥ (ठाणाङ्ग सूत्र, ठाणा ५)

अर्थः—पांच कारणों से राज्य दरबार में जाता हुआ जैन साधु भगवान् की आज्ञा उल्लंघन नहीं करता। यदि नगर के सब दरवाजे बन्द होने से बहुत से साधु और बहुत से ब्राह्मण भोजन के लिये और जल के लिये घूम न सकते हों न निकल सकते हों और ना ही अन्दरले बाहर और बाहरले अन्दर आ जा सकते हों तो उनके प्रबन्ध के लिये जैन साधु राजा के पास जावे। राजा को उनके प्रबन्ध करने की प्रेरणा करे।

भगवान् का सच्चा साधु तो इस नियम द्वारा दूसरे सन्यासियों, भिक्षुओं और ब्राह्मणों से सहानुभूति और इनकी सहायता करता है। किन्तु ये अहिंसा के विशेष ठेकेदार तेरापंथी साधु दूसरे की सहायता करने में भी एकान्त पाप बतलाते हैं। न जाने इस मनघड़न्त सिद्धान्त को किस शास्त्रानुसार सिद्ध करते हैं।

पाठक गण! मैं इन बातों का उत्तर केवल शास्त्र के पाठ से दे देता हूँ, उस पर कुछ विवेचना, टिप्पणी आदि विशेष विस्तार से नहीं करता, यतः—मैं समझता हूं कि पाठक तर्क का उत्तर स्वयं तर्क से देलेंगे। किन्तु पाठ प्रमाण के बिना प्रतिबादी निरुत्तर नहीं किया जा सकता, अतः मैं शङ्का को उठाकर उसका समाधान शास्त्र के पाठ से करता हुआ आगे चल पड़ता हूं अतः पाठक पाठोंका विशेष स्मरण रखें।

अब हमने तेरापंथियों की इस बात को शास्त्र की कसौटी पर परखना है, जो वे कहते हैं कि:—

"साधु थी अनेरा तो खर्व कुपात्र छै" ये बात कहां तक ठीक है:—

भगवान् महावीर तीर्थ के निर्माता थे। इसीलिये उनका नाम तीर्थङ्कर पड़ा। "तीर्थं-करोतीति, तीर्थङ्कर" अर्थात् जो तीर्थ की स्थापना करते हैं, उनका नाम तीर्थङ्करः पड़ता है। तीर्थ नाम साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका के समुदाय का है। वैसे

कोशानुसार तीर्थ नाम पात्र का भी होता है। क्योंकि:—आर्हत परूपितधर्म के चारों पात्र होते हैं। भगवान् के परूपित धर्म के अधिकारी वर्ग को कुपात्र ठहराना भगवान् के तीर्थ का अपवाद करना है। कुपात्रों का नाम तीर्थ नहीं होता क्योंकि:—

शास्त्र में चतुर्विधिसंघ का इकट्ठा ही हित-पथ्य और सुख तथा अनुकम्पा का कामुक होने से सनत्कुमारेन्द्र चरिम, भवसिद्ध होगा। वह पाठ जैसे:—

"गोयमा ! सणं कुमारे देविन्दे देवराया वहूणं, समणाणं वहूणं समणीणं वहूणं सावयाणं हिय काम ए, सुहकामए, पत्थ-कामए, आणुकम्पिए निस्सेयसिए हिय सुहे निस्सेस कामए से तेणट्ठेणं गोयमा ! सणंकुमारेणं भवसिद्धिए जावणो अचरिमे ॥

(भगवतीसूत्र, शतक तृतीय उ० १)

अर्थ:—हे गौतम ! सनत्कुमार देवेन्द्रदेव राजा बहुत से साधु, बहुत सी साध्वी, बहुत से श्रावक और बहुत सी श्राविकाओं का हित का कामी होने से, सुख का कामी होने से, पथ्य का कामी होने से, अनुकम्पा का कामी होने से अर्थात्:—हित, सुख, पथ्य और कल्याण का कामी होने से सनत्कुार देवेन्द्र भवसिद्ध हुआ—

अर्थात्:—चरिम भाव को प्राप्त हुआ। एक जन्म के बाद मोक्ष जाने वाला बना।

इस पाठ में चतुर्विध संघ का हितेच्छु होने से, तथा उसे पथ्य उपयुक्त औषधि तथा श्रेष्ठ आरोग्यप्रद भोजन आदि देने का

अभिलाषी होने से सनत्कुमार देवेन्द्र चरिम अर्थात् भवसिद्ध (एक भव बाद मोक्ष जाने वाला) हुआ। यहाँ पर यह नहीं कहा गया कि साधु और साध्वियों का ही हित-पथ्य कामी होने से चरिम-सिद्ध हुआ। अगर साधु के सिबा सब कुपात्र हैं और कुपात्र में श्रावक तथा श्राविका वर्ग भी हैं, तो उन कुपात्रों की अनुकम्पा, पथ्य, हित और सुख चाहने से सनत्कुमार देवेन्द्र कैसे भवसिद्ध हुआ ? तेरापंथियों के सिद्धान्तानुसार तो उसे श्रावक और श्राविका का सुख-पथ्य चाहने से पाप होलगना चाहिये था। किन्तु वह भवसिद्ध हुआ। इस प्रमाण से तुम्हारा सिद्धान्त "साधुथी अनेरा कुपात्र छै" यह एकान्त मिथ्या है।

क्योंकि:—शास्त्र में चतुर्विध संघका ही इकट्ठा हित करना भावी कल्याण का कारण कहा है। किन्तु तेरापंथी साधु के सिवा अन्य की सहायता करना वेश्या और कसाई की मदद करने के बराबर मानते हैं। उन्हें इस बात का तो उत्तर देना चाहिये कि:—भगवान् ने ठाणाङ्ग सूत्र में "अन्य मतके साधु और ब्राह्मणों की सहायता के लिये जैन-साधु राज दरबार में भी जा सकता है" ऐसा क्यों कहा। क्या भगवान् भी पाप-कारिणी आज्ञा दे सकते हैं ?
शर्म !!!

अगल पाठ देखिये जहाँ भगवान् ने समकित के आठ आचार कहे हैं। वहाँ पर भाई का आदर सत्कार और भोजन

खिलाना भी समकित आचार में कहा है। देखिये वह पाठः—

"निस्संकिय निकंखिय निव्वित्तिगिच्छं अमूढदिट्ठीय। उव वूह थिरी करणं वच्छलप भावणेऽट्ठे ते ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र, अ० २८)

१—सर्वज्ञ भाषित शास्त्र में देश से या सर्व से शंका न करना।

२—सर्वज्ञ भाषित शास्त्र से भिन्न शास्त्र की इच्छा न करना।

३—साधुओं की निन्दा और तप के फल में सन्देह न करना।

४—कुतीर्थों को धनवान् देख कर उस के धर्म को श्रेष्ठ और निर्ग्रन्थ धर्म को बुरा न मानना।

५—ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम्पन्न पुरुष की प्रशंसा करना।

६—धर्माचरण करने में कष्ट पाते हुए पुरुष को धर्म में स्थिर करना।

७—अपने सहधर्मी भाई का भात पानी से सहभोज से उचित सत्कार करना।

८—अपने धर्म की उन्नति के लिये सदा चेष्टा करते रहना ये आठ बोल समकित के हैं, जो प्रत्येक श्रावक के लिये अनुकरणीय हैं।

तेरापंथी समकित के आठ बोल पढ़कर विशेष कर सातवां बोल (अपने सहधर्मी भाई का भोजनादि से उचित सत्कार करना) देख कर तो अवश्य अपने कपोल कल्पित सिद्धान्त की तरफ दृष्टि डालकर देखेंगे कि "साधु थी अनेरातो सर्व कुपात्र छै" "अनेरा को दान देने में एकान्त पाप है" ये वाक्य कितनी

सत्यता को लिये हुए हैं। अगर अब भी वे अपनी हठधर्मी का फूटता भाण्डा बचाने का प्रयास करेंगे:—तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि:—यह पाप का घट सबको ले डूबेगा। अरे! स्वार्थियो संसार तो पहले ही स्वार्थ की प्रचण्ड आग में जल रहा है। आज उसके चारों तरफ स्वार्थ की भयानक अग्नि धधक रही है। ऐसे समय में तेरापंथ समाज उसको भड़काने के लिये जी तोड़ कर जोर लगा रहा है। वह प्रत्येक मनुष्य को "जो उनके चंगुल में फँस जाता है" एकदम निष्करुण बना डालते हैं, उसके सहानुभूति के भाव तो एकदम समाप्त करदिये जाते हैं। पंथ के झाँसे में उसे कठोरता से बांध दिया जाता है।

यह एक भयानक काण्ड है, जिसे रोकना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। क्या तेरापंथ समाज दान की प्रणाली को इस उदाहरण से नहीं समझ सकता? कि एक मास के दो पक्ष होते हैं—शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष, ये दोनों पक्ष पन्द्रह २ दिनों में विभक्त हैं। एक पक्ष का सिरा पूर्णमासी से और दूसरे पक्ष का सिरा अमावस्या से बंधा होता है। जिस दिन चन्द्रमा सोलह कला सम्पूर्णता को लिये संसार में शान्ति छिटका करता है—उसे हम पूर्णमासी कहते हैं। और जिस दिन पूर्ण अन्धकार होता है उस दिन को हम अमावस्या कहते हैं। अर्थात्:—एक रात पूर्ण प्रकाश वाली और दूसरी रात पूर्ण अन्धकार वाली। अब मास के अट्ठाईस दिन शेष रहे। उनमें क्रमशः अन्धेरा और उजाला घटता बढ़ता रहता है। न तो उन दिनों को हम पूर्ण प्रकाश

वाले कह सकते हैं और ना ही पूर्ण अन्धकार वाले। अन्त में हमें यह कहना पड़ेगा कि :—कुछ दिन प्रकाश वाले और कुछ दिन अन्धकार वाले होते हैं तथा इनमें प्रकाश और अन्धकार बराबर घटता बढ़ता रहता हैं। इसी प्रकार सुपात्र और कुपात्र का विषय है। जो पूर्ण साधु हैं, वे तो एकदम सुपात्र, और इनको दान देने का नाम भी सुपात्र दान होगा। इससे नीचे उतर कर ग्यारह पडिमाधारी श्रावक तथा उससे नीचे संसार के अन्य स्वधर्मी बन्धु तथा दीन, अनाथ अनुकम्पा दान के पात्र हैं।

दूसरा पक्ष :—जो दान कसाई वेश्यादिक को उनके व्यापार को उत्तेजित करने के लिये दिया जाता है वह एकदम कुपात्रदान ठहरा। वास्तव में ये दान के बिल्कुल अयोग्य ही हैं। अब रहे संसार में दीन अनाथादि कि :—इनको दान देने का क्या फल होता है ? यह समझने योग्य बात है। क्योंकि संयमी साधु को दान देने का फल तो एकान्त निर्जरा होती है, और वेश्यादिक के व्यापार में वृद्धि के लिये दिये गये दान का फल पूर्ण पाप है। शेष जो अनुकम्पा आदिक तथा वात्सल्य भाव आदि के द्वारा दान दिया जाता है वह अट्ठाईस दिनों की तरह पुण्य और पाप से मिश्रित समझना चाहिये। अगर कोई कहे कि सबको दान देने का फल पुण्य या एकान्त पाप है तो यह बात एकान्त असत्य मानी जायगी। क्योंकि:—पूर्ण संयमी साधु को दान देने से तो निर्जरा होती है। उसमें कारण यह है कि:—वह दान गुरु बुद्धि और मोक्ष की इच्छा से दिया जाता है, अनुकम्पा

आदि की इच्छा से नहीं। देखिये वह पाठ :—

"समणो वासगस्सणं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासु एसणिज्जेणं असण पाण खाइम साइमेणं पडिलाभे माणस्स किं कज्जइ ? गोयमा ! एगंतसो सेनिज्जराकज्जइ। नत्थिय से पावेकम्मे कज्जइ ॥"............

(भगवती सूत्र, श० ८ उ० ६)

अर्थः—प्रश्नः—अहो भगवान् ! तथा रूप पूर्ण और सच्चे साधु को तथा श्रमण भूत एकादश प्रतिमाधारी श्रावक को प्रासुक कल्पनीय अशन, पान, खादिम और स्वादिव्य आहार देने से दाता को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तरः—अहो गोतम ! वह आहार देने वाला दाता एकान्त निर्जरा को प्राप्त करता है। किञ्चिन्मात्र भी पाप कर्म नहीं करता।

पाठक ! इस पाठ को देखें और समझें किः—भगवान् एकादश प्रतिमाधारी श्रावक की भी पदवी वही रखते हैं अर्थात् उसे भी श्रमण भूत कहा जाता है और उसे भी दान देने का फल वही बतलाया है जो साधु को देने से होता है। अर्थात्:—एकान्त निर्जरा। इस पाठ में पुण्योपार्जन होना नहीं कहा गया है। तो तेरापंथियों की मान्यताऽनुसार मनुष्य किसी भी प्रकार से पुण्योपार्जन नहीं कर सकता। क्योंकिः—साधु भी अनेरा तो सर्व कुपात्र छैं। साधु को दान देने से निर्जरा की प्राप्ति होती ऐसा भगवान् फरमाते हैं। और कुपात्र दान से मांसभक्षण समान पाप लग जाता है, अतः पुण्योपार्जन का कोई मार्ग दीखता ही नहीं है।

ठीक भी है" सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखता है ! इसी तरह तेरापथियों को भी शायद सब जगह पाप ही पाप दीखता हो। दान करने में भी पाप, दया करने में भी पाप, किसी की निःस्वार्थ सेवा करने में भी पाप। अरे अकल के बुद्धुओ ! किसी जगह पुण्य भी पैदा होता है या नहीं ? कितनी आश्चर्यजनक बात है, सर्वत्र पाप ही पाप। भगवान् महावीर ने भी शायद इन्हीं को शायद इन्हीं को समक्ष रख कर ऐसे पुरुषों को दान देने में भी पाप कह दिया है:—

"समणो वासगस्सणं भंते। तहारूवं असंजय अविरय, अपडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणे स.णज्जेन वा असण पाण खाइम साइमेणं पडिलाभे माणस्स किंकज्जइ ? गोयमा ! एगन्त से पावे कम्मे कज्जइ। नत्थि से काइ निर्जरा कज्जइ।

(भगवती सूत्र, शतक ८ उ० ६)

अर्थ:—अहो भगवान् ! तथा रूप-भेषधारी (अर्थात् भेष तो सच्चे श्रमण निर्ग्रन्थों जैसा हो। जैसा कि:—भगवान् के समय में जमाली के साधुओं का था। और आज कल तेरापन्थियों का है) ऐसे असयति, अव्रती, अप्रत्याख्यानी को तथा पाप करते हुए को न रोकने वाले साधु को मोक्षार्थ गुरु बुद्धि से प्रासुक व अप्रासुक योग्य आयोग्य अशनादि देने वाले श्रावक को एकान्त पापफल होवे किंचित् निर्जरा न होवे।

अब तेरापन्थियों को पुण्य का पाठ देखना चाहिये अथवा उन्हें समझ लेना चाहिये कि:—दीन, अनाथ आदि को जो अनुकम्पादान दिया जाता है वह मोक्षार्थ व गुरु बुद्धि से नहीं दिया जाता। क्योंकि:—अव्रती को भी गुरु बुद्धि से दान देना केवल पाप को ही बांधना है। किन्तु उन्हें अनुकम्पा से दान दिया जाता है। अतः वह दान पुण्योत्पादक है। निर्जरा का उत्पादक अथवा पाप का उत्पादक नहीं है। क्योंकि:—जो गृहस्थी पुरुष पुण्य के लिये धर्मशाला (सराँय) तथा प्याऊ आदि बनवाते हैं वे भी पुण्य का संचय करते हैं। भगवान् ने ऐसे पुरुषों को उपकारी कहा है। तथा इन वस्तुओं से अल्प पाप बहु पुण्य बताया है। वह पाठ देखियेः—

"गोयामा ! से जहाणामए इहेव मणुस्स लोगंसि उवगारिय लेणाइ वा उज्जाणिय सेणाइ वा णिज्जाणिय लेणाइ वा वारिधारिय लेणाइ वा तत्थणं वहवे मणुस्साय मणुस्सिओय आसयन्ति सयन्ति। जहा रायप्पसेण इज्जे जाव कल्लाण फल विति विसेस पच्चण्भवमाणा विहरन्ति। अण्णत्थ पुण वसहिं उवेति।

(भगवती सूत्र, शतक १३ उ० ६)

अर्थः—अहो गोतम ! जैसे मनुष्य लोक में उपकारी जनों के परोपकार के लिये बनवाये हुए विश्रान्तिगृह होते हैं। जैसे किः— उद्यान, बंगले, बगीचे, मुसाफिर खाने आदि तथा आते जाते पथिकों की पिपासा दूर करने के लिये पौ (प्याऊ) होती हैं। वहां पर बहुत से मनुष्य, स्त्रियां आ आकर आश्रय ग्रहण करती हैं।

शयन करती हैं। इसका विस्तृत उपाख्यान राजप्रश्नीय सूत्र से (अर्थात् राजा प्रदेशी की कथा से ग्रहण करना) जिस प्रकार राजा प्रदेशी ने श्रमण निर्ग्रन्थ केशी कुमार जी के कहने पर "कि:—हे भूपते ! रमणीक होकर अरमणीक मत होना। अर्थात्:—प्रजा के दीन दुःखी, अनाथ और ब्राह्मणों का तथा पशुओं का सहायक आश्रयस्थल बन कर स्वार्थी, हिंसक, निर्दयी मत बनना। राजा प्रदेशी उत्तर देता है कि हे महाराज ! धर्म-गुरो ! मैं रमणीक होकर ही विचरूंगा, अरमणीक होकर नहीं। मैं आज से ही बहुत सारे दुःखियों को, दीन, अनाथ और साधु ब्राह्मणों को अशन, पान, खादिम, स्वादिम, विपुल सामिग्री तैयार कराके भोजनादि दूँगा, मैं स्वय उनको खिलाऊंगा। तथा इस विशाल राज्य की आय (आमदनी) का चौथा भाग इस काम में लगाऊँगा और बहुत सारे पोषध उपवास करता हुआ विच-रूँगा। इसी प्रकार जो उपकारी मनुष्य कल्याण तथा फलवृत्ति विशेष को भोगते हुए और पुण्योपार्जन करते हुए विचरते हैं, वे मनुष्य पुण्यार्थ बनाए हुए स्थानों में आप नहीं रहते, किन्तु उनमें तो दूसरे थके मान्दे पुरुष और स्त्रियां ही विश्राम लेती हैं।

क्या तेरापंथ समाजः—इस पाठ को पढ़कर अपनी भूल पर पश्चात्ताप करेगा ? क्या वह फिर अपने शुद्ध मार्ग पर आजा-यगा ? क्या वह पुण्य कार्यों में फिर तो एकान्त पाप न बताएगा ? अगर उसे भगवान् के वचनों पर कुछ भी श्रद्धा हुई तो वह

अवश्य भोली जनता की आँखों में धूल भौंकने से बाज़ आजायगा। अगर मुँह लगे हुए (सेवा का नियम करवाकर उनसे स्वादिष्ट गरिष्ठ भोजन करना) स्वाद का चस्का नहीं छूटने का तो तेरा-पंथियों ! समझलो किः—तुम्हारे अपभाषण सुश्रद्धा का विरोध और सूत्रों के अनर्थ विस्तीर्ण मोहनीय कर्मसागर को खोद रहे हैं। उसमें डूब मरने के सिवा तुम्हारे लिये और कोई चारा नहीं होगा। अगर अब भी वे यही रटते रहेंगे किः—"साधु थी अनेरा तो सर्व कुपात्र छै। कुपात्रदान मांस भक्षण समान पाप है। जैसे "चोर, जार, ठग एक समान व्यवसायी हैं, इसी प्रकार संसार में केवल तेरापंथियों को छोड़कर सब कुपात्र हैं, और तेरापँथियों के सिवा अन्य किसी साधु संन्यासी को दान देना और मांस भक्षण करना एक बराबर हैं।" अयि धर्म और दान के शत्रुओ ! कुछ तो शर्म करो। दान का द्वार बन्द करने की कुप्रथा का प्रचार बन्द करदो। इस कुबुद्धि को नष्ट कर दो, दूर कर दो इस तंग दिली को। क्योंकिः—यह समझने की बात है किः—

दान निवृत्ति से होता है, निवृत्ति नाम त्याग का है। त्याग जीवन को उन्नत बनाता है, और पवित्र आदर्श को समीप कर देता है, कल्याण मार्ग की सीढ़ी पर चढ़ने के लिये हमें शक्ति प्रदान करता है। इससे अच्छी वस्तु संसार में मिलनी असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है जो मनुष्य को कुछ ही समय में आदर्श-मय बना देती हो।

शमस्तु सर्व जगताम्।

"पंथियों की नीचता"

इस तीर्थ के आदि कर प्रवर्तक शासनपति श्रमण भगवान् महावीर ही सर्वेसर्वा हैं। उनकी आज्ञा के अनुयायी साधु-साध्वी श्रावक और श्राविका के संघ का नाम ही तीर्थ है। जैसे कि :— "खामेमिसव्वे जीवा' के पाठ से पहले तीर्थ अङ्गों को धन्य २ पद से विभूषित किया जाता है यथा :—धन्य २ साधु "धन्य २ साध्वी" धन्य श्रावक और धन्य २ श्राविका कह कर क्षमायाचना आदि का व्यवहार है तथा वन्दना आदि में (पांच पदों की बड़ी वन्दना) भी धन्य हैं एवं वे ग्राम-नगर पुर पाटन जहां अरिहन्त देव विराजते हैं, धन्य है उनको जो अरिहन्त देव का उपदेश सुनते हैं श्रद्धते हैं।" भगवान् के उपदेश के श्रवण मात्र से श्रोता धन्यवाद से विभूषित किया जा सकता है। तो भगवान् के तीर्थ का अङ्ग भूत और संयम पालने में सहायक भूत श्रावक तो धन्यार्ह है ही। किन्तु सभ्यता के प्रतीक तेरापंथी आचार्य देव "भिक्षु जश-रसायण" पृ० ५५ में क्या फरमाते हैं :—

॥ "श्रावक कसाई सरीखा रे०" ॥

उससे अगले पृष्ठ ५६ पर क्या लिखते हैं, पढ़िये :—

॥ "श्रावक ने चोर गिणै इम सरीखो" ॥

श्रावक असंयती, अव्रती है, श्रावक कुपात्र है, श्रमणभूत श्रावक को भी दान देना मांस भक्षण समान पाप है। आदि आदि ॥

अरे! कहां तो सभ्यता, शिष्टाचार का आदर्श साधु और श्रावक, और कहां ये कुल कलङ्क, जो श्रावक का अपमान करने में अपनी चतुराई समझ रहे हैं। श्रावक समाज के लिये कितना अनर्गल भाषण किया है। इन्होंने तो अपना नाम जैन रख कर शिष्ट समाज को कलङ्कित करना ही अपना मुख्य ध्येय बना डाला है। तेरापन्थियो! क्या तुम्हें इस बात का पता है कि श्रावक भी भगवान् के शिष्य हैं? तथा साधु के साथ भी इनका गुरु शिष्य का सम्बन्ध है? अगर यह ठीक है तो बताओ कि:— कभी क्रोध और शान्ति का, लोभ और त्याग का सम्बन्ध आपस में हुआ है? अगर नहीं तो तुम्हारी मान्यताऽनुसार कुपात्र श्रावक का सुपात्र साधु के साथ कैसे सम्बन्ध हो सकता है। देखिये:—

"साधु संयती — श्रावक असंयती,
साधु-धर्मी — श्रावक अधर्मी,
साधु-सुपात्र — श्रावक कुपात्र,
साधु पूर्ण त्यागी — श्रावक चोर जार कसाई",

तो आप बताएँ कि:—कांजी और दूध का सम्बन्ध कैसा, आग और जल का सम्बन्ध कैसा। तेरापंथियों को चाहिये कि:—

यदि उन्होंने श्रावक से सम्बन्ध रखना है तो उन्हें स्वय भी श्रावक जैसा कुपात्र बनने के लिये तैयार रहना चाहिये। क्योंकि :— भगवान् **निशीध** सूत्र में फरमाते हैं कि :—जो साधु कुपात्र को दीक्षा देता है—वह चौमासी प्रायश्चित्त का भागी होता है। अगर वह दण्ड न ले तो स्वयं कुपात्र और आज्ञाविरोधक तथा भगवान् का चोर माना जाता है। अतः तेरापथियों को या तो स्वयं कुपात्र बनना होगा, नहीं तो "साधु थी—अनेरा तो सर्व कुपात्र छै" यह सिद्धान्त समाप्त कर श्रावक को भी सुपात्र मानना होगा।

अब आप यह देखिये कि :— श्रावक के विषय में भगवान् क्या कहते हैं :—उत्तराध्यायन सूत्र के २१ वें अध्ययन में पहली और दूसरी गाथा के पाठ में श्रावक को मोटी आत्मा का धनी और अपना शिष्य स्वीकार किया है॥

उपासक दशाङ्ग सूत्र के छठे अध्ययन में कुण्ड कोलिया श्रावक को गौशालक मत के देवता को पराजित करने पर भगवान् ने उसे धन्य २ विशेषणों से सम्बोधित किया है।

"धन्नेसिं कुण्ड कोलियाणं तुम"

(उपासक दशांग)

अर्थ :—हे कुण्डकोलिया! तुझे धन्य है।

राज प्रश्नीय सूत्र में भगवान् ने चित्त मंत्री के तात्विक ज्ञान की प्रशंसा की है।

सूयगडाङ्ग सूत्र में लेप गाथा पति के अपूर्व गुणों का कितना कितना विस्तृत परिचय दिया है।

क्या ? भगवान् कुपात्र और कसाई सरीखों की प्रशंसा करते रहते थे। खेद है !!!

उपासक दशांग सूत्र में केवल उत्कृष्ट श्रावकों का ही वर्णन है।

सूय गडाङ्ग सूत्र में भगवान् ने श्रावक के लिये क्या कहा है ? पाठक उसे भी देखें :—

आह वे तच्चस्स ठाणस्स, मीसगस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणं वा (४) संते गतिया मणुस्सा भवन्ति। तं जहा :— अप्पिच्छा, अप्पारम्भा, अप्प परिग्गहा, धम्मिया, धम्माणुया, धमिट्ठा, धम्माक्खायी, धम्मप्प लोइया, धम्म पलज्जणा, धम्म सम्मुदायारा, धम्मेणं चेव विर्त्ति कप्पेमाणा विहरन्ति। सुसीला, सुव्वया, सुपडिणंदासाहूं ॥

(सूयगडाङ्ग सूत्र, श्रु० २, अ० २)

अर्थ :—तीसरा स्थान मिश्र संज्ञक है। उसे विभङ्ग कहा जाता है। इस संसार के भीतर पूर्व आदि दिशाओं में रहने वाले कोई २ मनुष्य शुभ कर्म करने वाले (श्रावक धर्म पालने वाले) होते हैं :—अल्प इच्छा वाले, अल्पारंभी, अल्प परिग्रही, धार्मिक, श्रुत और चारित्र धर्म के अनुकरण करने वाले, धर्मेष्ट (श्रुत और चारित्र धर्म ही जिन्हें इष्ट हैं) धर्माख्यायी अर्थात् :—

भव्य जीवों के समस्त धर्म में प्रेम रखने वाले, हर्ष के साथ धर्माचरण करने वाले, धर्म के साथ अपनी आजीविका चलाने वाले, सुन्दर स्वभाव वाले, सुव्रती, और साधु जैसे आनन्द में मग्न रहने वाले श्रावक होते हैं ॥

पाठक इस पाठ से भलीभांति अनुमान लगा सकते हैं कि:—परम करुणालय श्रमण भगवान् महावीर का सच्चा उपासक कितने उच्च पद का अधिकारी है। साधु के संयम में श्रावक सहायक है। अतः भगवान् श्रावक को:—सुपात्र, सुव्रती, संयतासंयती, धर्मी, धर्म से आजीविका चलाने वाला, उत्कृष्ट श्रावक, साधु जैसा, आदि २ विशेषणों से विभूषित करते हैं। किन्तु तेरापंथी:—श्रावक को:—कसाई, चोर, कुपात्र, असंयती, अव्रती, अप्रत्याख्यानी आदि विशेषणों से अलंकृत करते हैं। अतः प्रिय ! श्रावक वर्ग ! कसाई और चोर बनाने वाली कम्पनी से ज़रा सम्भल कर बात करना। अभी तेरापंथी चोर के दुर्गुणों से परिचित नहीं दीखते। अगर नहीं तो देख लीजिये चोर किसे कहते हैं। यथा:—

"तत्थणं रायगियहे नगरे वहिंया विजए नाम तक्कर होत्था। पावे चण्डाले, रुवे, भीमतर रुद्द कम्मे अरुसियदित्ता रत्त नयणे खर फरुस महल्ल विगय बीभत्स दाढिए असं पुडिए उट्ठे उद्धय, पइण्ण लं वंत मुध्यए पइभमर राहु वण्णे:—

णिरणुक्कोसे णिरणुतावे दारुणे पइभते णिसे सतिते निरणु कम्पे० । इत्यादि ॥

(ज्ञाता सूत्र)

अर्थः—उस राजगृही नगरी के बाहर विजय नामक अति-प्रसिद्ध चोर रहता था। (सूत्रकार उसकी प्रकृति के विषय में बताते हैं):—वह पापी, चाण्डाल, रौद्र, भयङ्कर, घोरकर्मा, आरक्तनेत्र, अति कठोर, भयानक और विकीर्ण केशों से युक्तः—दाढ़ी वाला, पृथक् २ बड़े २ दांतों वाला, भिन्न २ मोटे २ हैं ओष्ठ जिसके, काली नागिन के समान बिखरे हुए हैं केश जिसके भ्रमर और राहुग्रह जैसा है कृष्णतम रंग जिसका, निर्दयी, अविवेकी, अकार्य करने से न झिझकने वाला, भय देने वाला, नृशंस, नर-संहारक, अनुकम्पारहित, आदि २ दुर्गुणों से (वह विजय चोर) भरा पड़ा था।

ऊपर के पाठ में चोर के विषय में कहा गया है। ये बातें तो विजय चोर में घटती थीं। अतः जिस मनुष्य में ये बातें घटें उसे ही चोर समझना चाहिये। अब तेरापंथी बताएं किः—क्या भगवान् महावीर का सच्चा उपासक श्रावक चोर कहलाने का हकदार है? अगर नहीं तो तेरा पंथियों को अपनी नीचता अभी से छोड़ देनी चाहिये।

हां इसमें एक बात और भी है किः—तेरापंथी और श्रावकों में उपरि लिखित चोर को उपमाओं में से दो विशेषताएं तो अव-

श्य ही पूरी घटती हैं:—(१) दया से रहित होना (२) अनुकम्पा से जीव बचाने में भी पाप कहना। अतः निरनुकम्पी हैं। इसलिये तेरापंथियों को यह लिखना चाहिए था कि:—तेरापंथी श्रावक कसाई और चोर होते हैं। अगर आचार्य जय गणी "श्रावक कसाई सरीखो" के आगे से तेरापंथी शब्द जोड़ देते तो एक तो बात सच्ची कही जाती और दूसरे हमें भी कोई आपत्ति न होती फिर तो सीधा गवर्नमेंट को संकेत कर दिया जाता कि तेरापंथी श्रावक कसाई और चोर के रूप में फिरते हैं, जिससे व्यवस्था बिगड़ने का भय है, अतः इनका सुप्रबन्ध करना चाहिये। क्योंकि तेरापंथी अपने श्रावकों की चोरी बताते हुए भी बड़े प्रसन्न होते हैं और चोर की बड़ी प्रशंसा करते हैं। देखिये—

'भ्रमविध्वंसन' की प्रस्तावना में पृ० (१।) पर लिखते हैं कि "एक कच्छ देशस्थ बेला ग्राम निवासी मूलचन्द कोलम्बी बड़ा तपस्वी और तत्वों का ज्ञाता श्रावक रहता था।............
उस श्रावक ने समय पाकर किसी साधु के पुट्ठे में रखी हुई भ्रम विध्वंसन की प्रति को रात के समय चुरा लिया।

यह तेरापंथी श्रावकों की तारीफ है कि वे साधुओं की चोरी करने में भी नहीं झिझकते। ठीक है पहले अपने घर पर चोरी करना सीखेंगे तो दूसरे के घरों पर हाथ साफ कर सकेंगे। किन्तु पाठक अब कुछ देर के लिये कुपात्र का विषय भी पढ़लें।

तेरापंथी साधू, साधू के सिवा सब को कुपात्र मानते हैं।

कुपात्र को दान देना मांस भक्षण समान पाप बताते हैं। अतः इन के कथनानुसार एकादश पण्डिमाधारी श्रावक भी कुपात्र हैं। जैसे कि भ्रमविध्वंसनकार; पृ० १०४ पर एकादशपण्डिमाधारी श्रावक को आहार देने में एकान्त पाप बतलाते हैं।

परन्तु भगवान् ने समवायाङ्ग सूत्र में ऐसे श्रावक को श्रमण-भूत श्रावक कहा है। देखिये—

"समणभूए आवि भवइ"

(समवायाङ्ग सूत्र)

अर्थात् :—प्रतिमासम्पन्न श्रावक साधु सदृश होता है। कारण :—कि :—प्रतिमासम्पन्न श्रावक को दशविधि साधु धर्म के अनुष्ठान करने और साधु की तरह भण्डोपगरण रखने की दशाश्रुतस्कन्ध में आज्ञा दी गई है। देखिये वह पाठ :—

"अहा वरा एकादशमा उवासग पडिमा सव्व धम्मरुइय वि भवइ उद्दिमभते से परिण्णाते भवति। सेणं खुरमुण्डए वालुत्त सिर एवा गहित्तायार भंडगनेपत्था। के इमे समणाणं निग्गंथाणं धम्मे तं सम्मं काएणं फासे माणे पाले माणे पुरतो जुग मायाए पेहमाणे दट्ठूणं तसे पाणे उदट्ठु पायंरीएज्जा, साहट्ठु पायं रीएज्जा, तिरिच्छेवा पायं कट्टु रीएज्जा सति पर क्कमे। संजयामेव पक्कमेज्जा णो उज्जुयँ गच्छेज्जा॥

(दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र, अ० ६)

अर्थ :—अब एकादश प्रतिमाओं का वर्णन किया जाता है।

एकादश प्रतिमाधारी श्रावक को पूर्व प्रतिमा के भी सब धर्मों में रुचि रखनी चाहिये। अपने निमित्त बना हुआ भोजन न लेना चाहिये। केशों का लुञ्चन या क्षुर मुण्डन कराकर श्रमण निर्ग्रन्थों के सदृश आचार-पालनार्थ पात्र, रजोहरण, और मुख वस्त्रिका आदि सभी धर्मोपकरणों को अपने पास रखना चाहिये। श्रमण निर्ग्रन्थों जैसा ही वेश पहनकर श्रमण निर्ग्रन्थों के सभी धर्मों का शरीर से स्पर्श और पालन करना चाहिये। यदि मार्ग में त्रस प्राणी दृष्टि गोचर हों तो उनकी रक्षा के लिये अपने पैर के पूर्व भाग को ऊँचा करके अग्रतल की सहायता से गमन करना चाहिए। अथवा जहां त्रस प्राणी न हों वहां पर पैर रख कर जाना चाहिये तात्पर्य यह है कि :—मार्ग के प्राणियों की रक्षा के लिये कभी पैर को संकुचित कर और कभी एड़ी के ऊपर अपने सम्पूर्ण शरीर का भार देकर चलना चाहिये। अविवेक से नहीं चलना चाहिये। यह बात भी वहां के लिये कही गई है जहां गमनार्थ अन्य कोई मार्ग न हो। जहां दूसरा मार्ग विद्यमान हो तो इस प्रकार के प्राणि संकुल मार्ग पर से जाना उचित नहीं।

इस पाठ से स्पष्ट प्रकट है कि :—एकादश प्रतिमा धारी श्रावक दशविध यतिधर्मों का पूर्ण रूपेण पालन करने वाला बड़ा ही पवित्रात्मा और सुपात्र होता है। ऐसा श्रावक को भी कुपात्र कहना और व्रतपारण के दिन इनको आहार देने में भी एकान्त पाप बताना अधिक से अधिक अनर्थ करना है। क्योंकि :— अगर श्रावक को आहार देना और ऐसे श्रावक का आहार करना

भी एकान्त पाप में शामिल है तो भगवान् ने श्रावक के आहार आदि लाने का विधान कैसे कर दिया ? तेरापंथीय सिद्धान्तानुसार आहार देनें वाला श्रावक और प्रतिमाधारी श्रावक लेने वाला तथा उसे खाने वाला पाप ही पाप करता है। परन्तु :—भगवान् उसके लिये आहार आदि लाने की प्रणाली बताते हैं :—एकादशप्रतिमाधारी श्रावक को ऐसे आहार लाना चाहिये। यथा :—

"तस्सणं गाहावइ कुल पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठस्स कप्पति एवं वदित्तए "समणो वासगस्स पडिमा पडिवन्नस्स भिक्खं दलयह"। तं चेव एयारूवेण विहारेण विहरमाणेणं कोइ पासित्ता-वदिज्जा "केइ आउसो तुमं वतव्व" सिया। सेणं गया रूवेण विहोरण विहरमाणे जहन्नेण एगाहंवा दुयाहंवा तियाहंवा उक्कोसेण एकादस मासे विहरेज्जा ॥

(दशाश्रुतस्कन्धसूत्र)

अर्थ :—एकादश प्रतिमाधारी श्रावक को गृहस्थी के घर में आहार लाने के लिये प्रविष्ट होते समय ऐसे बोलना चाहिये, कि :—"प्रतिमासम्पन्न श्रावक को भिक्षा दो" इस प्रकार के विहार से विचरते हुए उसको देखकर यदि कोई गृहस्थी पूछे कि :—आयुष्मन् ! तुम कौन हो ? तब उसको कहना चाहिये कि :—"मैं प्रतिमा सम्पन्न श्रमणोपासक हूं"। यही मेरा स्वरूप है। इस प्रकार वह श्रावक—जघन्य एक, दो या तीन दिन उत्कृष्ट एकादश मास पर्यन्त विचरता रहे। श्रमणोपासक की यही एकादशवीं प्रतिमा है। यही स्थविर भगवान् ने कही है।

इस पाठ में और इससे पहले पाठ में श्रावक के वेश आदि और गोचरी आदि लाने का भगवान् ने विधान किया है। तेरा पंथियों की मान्यतांऽनुसार ऐसे उत्कृष्ट धर्मी और श्रमणभूत श्रावक को भी आहार देना एकान्त पाप है, तो समझना चाहिये कि :—

भगवान् के धर्म का विरोधी कोई निन्हव फिर संसार में पैदा हो गया है। वह स्वयं कुपात्र होता हुआ दूसरे सुपात्रों को भी कुपात्र भाव में से घसीटना चाहता है।

अरे तेरापंथियो ! तुम्हारी पोल कब तक छुपी रहेगी, कुछ तो धर्मकुल की लाज रखो ? चतुर्विध (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) संघ ही पात्र है। उसे कुपात्र कहना अपनी नीचता का नग्न नर्तन करना है॥

——:※:—

"विषैली धृष्टता"

संसार में मातृत्व भी एक गौरव का स्थान है। माता वात्सल्य की मूर्ति है, धर्म की शिक्षिका है, अतः वह हर समय आदरणीय है। परन्तु तेरापंथी सज्जन क्या कहते हैं, वह भी सुनियेः—

"माता ने वेश्या सरीखी मानीं"

(भिक्षु जश रसायण, पृ० ५६ गा० ७)

अर्थात्—माता और वेश्या एक समान हैं।

कितने ज्ञान की बात कही। माता को वेश्या कहकर अपनी बुद्धिमत्ता का कितना अनोखा परिचय दिया है। क्या दुनियां में ऐसा भी कोई आदमी है जो सीता, दमयन्ती आदि सच्चरित्र सतियों को वेश्या कहने का दुस्साहस कर सकता हो। उपासक दशाङ्ग सूत्र में माया को, भगवान् का अनन्य भक्त जीवाजीव का त्राता चूलणी पिया क्या कहता है पढ़िये:—

'मे माया देव गुप्त जननी'

अर्थात्—मेरी माता मेरी पूज्य है क्योंकि वह पूज्य होने से

देवता स्वरूप है, सदुपदेश देने से और हित चिन्तक होने के कारण गुरु है और जन्म देने से जननी तथा गर्भ के धारण, लालन, पालन आदि दुष्कर से दुष्कर कार्य करने से माता है। माताएं ऐसी होती हैं।

लज्जा की बात है कि जिन माताओं को श्राविका की पदवी देना, तीर्थ की अङ्गभूत मानना और उन्हें ही वेश्या बना डालना! क्या इनका पंथ कसाई और चोर तथा वेश्याओं से ही भरा हुआ है?

जहां भारतीय संस्कृति जननी और जन्मभूमि के सामने स्वर्ग को भी तिलाञ्जलि दे देती है, वहां तेरापंथी इन्हें भी अपशब्द कहकर अपना मन शान्त कर लेते हैं। परन्तु उन्हें ऐसा करना नहीं चाहिये। माता के साथ ऐसा निष्ठुरतम व्यवहार करते समय उन्हें यह श्लोकार्ध दृष्टिगोचर रखना चाहिये—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

उन्हें पंथ के जोश में आकर राष्ट्र और धर्म को नहीं भूल जाना चाहिये।

—:*:—

"माता-पिता की सेवा में पाप"

भगवान् जब माता त्रिशलादेवी के गर्भ में थे तो उनके मन में उस समय भी माता की सेवा करने के भाव हिलोरें ले रहे थे। उन्होंने माता के दुःख को दूर करने के लिये अपना अङ्ग सञ्चालन बन्द कर दिया था, जिसका परिणाम स्वरूप माता का कष्ट तो मिट गया किन्तु गर्भ के क्षय की भ्रान्ति उसके मन को अधिकाधिक सताने लगी। अतः भगवान् को फिर अपना अङ्ग सञ्चालन करना पड़ा था। और भगवान् के हृदयपटल पर उस दिन मातृ प्रेम की ऐसी अक्षुण्ण छाप पड़ी कि जिससे उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरे माता-पिता जीवन वास करेंगे तब तक मैं दीक्षा धारण नहीं करूँगा। भगवान् ने माता-पिता की वत्सलता को खूब झांक कर देखा और अनुमान किया कि माता-पिता की अपने पुत्र पर कितनी २ गहरी आशायें लगी होती हैं। उन्हें पूरा करना कुछ न कुछ तो पुत्र का कर्त्तव्य होना ही चाहिये। भगवान् ने गृहस्थ में रहते हुए माता-पिता की सेवा करके हमारे लिये आदर्श उपस्थित कर रखा है।

भगवान् ने ठाणाङ्ग सूत्र में तीन मनुष्य महा उपकारी बत-

लाये हैं जिनके उपकार का ऋण चुकाना अति कठिन होता है। (१) माता-पिता का (२) धर्म व विद्या गुरु का (३) काल के मुह से बचाने वाले दयालु पुरुष का। परन्तु तेरापंथी माता-पिता की सेवा में भी पाप कहते हैं। देखिये:—भ्रमविध्वंसन पृ० ४६ पर—

माता पितारो विनय करेतो सावद्य छै। आज्ञा बाहिर छै।

अर्थात्—माता-पिता की विनय भक्ति करना पाप सञ्चित करना है। भगवान् की आज्ञा का विरोध करना है।

पाठक गण! अब जरा इस बात की सचाई परखिये कि माता-पिता की सेवा करना भगवान् का विरोध करना है? अपिवा, उनका अनुकरण करना है! भगवान् उववाई सूत्र में माता-पिता की सेवा का फल स्वर्ग प्राप्ति बतलाते हैं। देखिये वह पाठ:—

से जे इमे गाम नगर जाव सन्निवेसेसु मणुआ भवन्ति। पगइ भद्दगा, पगइ उवसन्ता, पगइ पतणु कोहमाणमाया लोभो मिउमद्दवसम्पन्ना अल्लीणा वीणीया अम्मा पि ओ उ सुस्सूगा अम्मा पत्ताणं अणति कमणिज्ज वयणा अप्पिच्छा, अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा अप्पेणं आरंभेणं अप्पेणं आरंभसमारंभेणं विर्त्ति कप्पेमाणा वहूइं वासाइं आउयं पालयन्ति-पालित्ता काल मासे कालं किच्चा अनुत्तरेसु वाण मंतरेसु देवत्ताए उव व तारो भवन्ति। तं चेव सव्वं नवरं ठिति चौद्दस वास सहस्साइं॥ (उववाई सूत्र)

अर्थ—ग्राम, नगर आदि सन्निवेशों में रहने वाले मनुष्य जो

स्वभाव से भद्रिक, परोपकारी हैं, शान्त हैं, अल्पक्रोध, मान, माया, लोभ वाले और अहङ्कार रहित होकर माता पितृ रूप गुरुजन की जो विनय करते हैं। माता-पिता के वचनों का कभी भी उल्लघन नहीं करते, माता-पिता की सेवा शुश्रूषा करते हैं। अल्पारम्भी और अल्पपरिग्रही हैं। अल्पारम्भ से अपनी आजीविका चलाते हैं। वे मनुष्य बहुत वर्षों तक अपनी आयु भोगते हैं। आयु समाप्त कर अर्थात् काल के समय पर काल करके बाण व्यन्तर संज्ञक देवलोक में देवता होते हैं। वहां पर वे चौदह हजार वर्ष तक सुख-पूर्वक निवास करते हैं।

पाठकों ने देख लिया होगा कि भगवान् ने माता-पिता की सेवा का फल क्या कहा है? स्वर्ग। जहां अल्पारम्भादि शुभ कर्तव्यों ने मनुष्य को स्वर्ग में पहुंचाने के लिये सहायता की है वहां माता-पिता की सेवा ने उसे बड़ी उमर (१४०००) दी है। यदि माता-पिता की सेवा करना पाप होता तो इसकी इन शुभ कर्तव्यों में गणना न की जाती हालांकि पाठ में माता-पिता की विनय और सेवा सुश्रूषा का पाठ पृथक् २ पढ़ा गया है कि किसी को भ्रान्ति न हो जाय कि स्वर्ग केवल अल्पारम्भादि कर्मों से मिलता है, माता-पिता की सेवा से नहीं। अतः स्वर्गफल विशेषकर माता-पिता की सेवा से ही मिलता है। यदि सेवा में भी पाप होता तो सेवक स्वर्ग का अधिकारी कैसे बनता? पापी और स्वर्गाधिकारी शब्द आपस में महा विरोध रखते हैं। जिस माता-पिता के सेवक को तेरापथी पापी ठहराते हैं, उसे ही भगवान् पुण्यात्मा और स्वर्गाधिकारी

कहते हैं। कितना अन्तर है भगवान् के वचन में और तेरापन्थियों के कपोलकल्पित सिद्धान्त में ? जितना पृथ्वी और आकाश में। इतना होते हुए भी तेरापंथी अपने आपको उनकी आड़ में छुपाकर बात बनाते हैं। समय मिलने पर उन्हें 'रागी' 'मोही' आदि कहकर बदनाम भी कर देते हैं। और उनके स्थान पर भीखन और तुलसीराम को भगवान् बना डालते हैं। यह धोका है, तेरापंथी अपने आप को जैन कहकर समाज को धोके में फंसाना चाहते हैं। वास्तव में यह इनकी कृतघ्नता है।

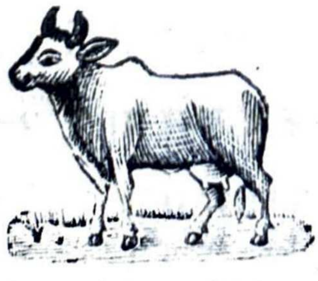

"दया के नाशक"

संसार में सब प्रकार के प्राणी हैं, अच्छे भी और बुरे भी। दयालु से दयालु और पापी से पापी भी। परन्तु ऐसे निराले दिमाग के मनुष्य मनुष्य नहीं, किन्तु मनुष्यता के हत्यारे हैं, जो दया माता के प्राण लेने पर ही उतारू हों। धर्म का मूल दया है, सज्जनता का लक्षण दयालुता है, भगवान् का उपदेश दया है, माहण (साधु) का उद्देश्य (मा-मत, हणमार) जीवदया है, हृदय की उपज है, कल्याण की सीढ़ी है, नाग-नागिन को धरणेन्द्र पद्मावती बना देना भगवान् पार्श्वनाथ की लोकोत्तर दया का ही चमत्कार है, दया जीवन का सार है, एक कबूतर की दया ने मेघरथ राजा को तीर्थङ्कर गोत्र दे डाला।

भगवान् नेमनाथ जी ने दीन, अनाथ पशुओं की रक्षा के निमित्त अपने विवाह को भी तिलाञ्जलि दे दी, यह सब कुछ दया का ही अपूर्व चमत्कार है। दया का कितना भी गुण वर्णन किया जाय, वह एक शक्तिधर ज्योति है, जिसके उदय होने पर प्राणी नर से नारायण बन जाता है, और भक्त से भगवान्।

यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं:—कि ऐसी अपूर्व लाभप्रद दया का नाश करना कितना अनर्थ कर देना है। प्राणी की दया से प्राण रक्षा करने में एकान्त पाप बतलाना अपना दुःसाहस प्रकट करना है। मालूम होता है कि इनका कलेजा पत्थर का बना हुआ है और इनके दिल दिमाग को सीमक खा चुकी है। इन्सानियत तो सरे बाजार बिक चुकी है! गुरुओं का दिया ज्ञान गिरवी रख दिया है! होश में आवो तेरापंथियो! देखो तो सही, क्या तुम्हारे ये ही पवित्र सिद्धांत हैं? क्या इन्हीं पाप नियमों पर नाच रहे हो? इन्हें ही सबल बनाने के लिये शास्त्रों की दुहाई दे रहे हो? देखो! देख के विचारो! :—

भ्रमविध्वंसन पृ० १२० पर लिखते हैं कि:—

"श्री तीर्थङ्कर देव पिण पोताना कर्म खपावा तथा अनेरा ने तारिवाने अर्थे उपदेश देवे इम कह्यो छै। पिण जीव बचावा उपदेश देवे इम कह्यो नहीं।"

"देखिये अनुकम्पाढाल में भीखन जी क्या फरमाते हैं:—

"कईक अज्ञानी इमकहे छै, छैकाया रे काजे हो देवाधर्म उपदेश। एक जीव ने समझाविया, मिट जावे घणाँ जीवांरा क्लेश॥ छैः कायारे घरे शान्ति हुए, एहवा भासे अन्यतीर्थीधर्म॥ त्यां भेव न पायो जिनधर्म रो, ते तो भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म मत मार कहे उणरो रागी रे, तीजेकरण हिंसा लागी रे॥

अर्थात्:—कुछ लोग (स्थानक वासी साधु) कहते हैं कि:—

हम छैः काय के घरों में शान्ति होने के लिये उपदेश देते हैं। क्योंकिः—एक जीव को समझा देने से बहुत जीवों का क्लेश मिट जाता है लेकिन छैः काय के घर में शान्ति होने के लिये उपदेश देना अन्य तीर्थी का धर्म है। अर्थात्:—दूसरे लोगों की मान्यता है। जैन धर्म की नहीं। इसलिये छैः काय के घरों में शान्ति होने के उद्देश्य से उपदेश देने वाला वक्ता जैन धर्म के गूढ़ रहस्य को नहीं जानता। वह भूला हुआ है, जो जीवों की दया के लिये तथा शान्ति के लिये उपदेश देता है और उसके अशुभ कर्म का उदय हुआ है। जो मनुष्य हिंसक के हाथ से मत मार कहकर जीव की रक्षा करता है, उसे तीसरे करण से हिंसा का पाप लगता है।

पाठक! देखें कि-—जैन-धर्म के दयामय सिद्धान्त पर कितना भयानक कुठाराघात है। जो जैन धर्म जीवों की दया और रक्षा के लिये ही प्रवृत्त हुआ है, उसके नाम से निर्दयता का प्रचार करना कितना अत्याचार है। पाठक जरा सिद्धान्त की तरफ भी दृष्टि डालकर देखें और तुलना करें किः—तेरापंथ और जैन धर्म में कितना गहरा मतभेद है:—

"सव्व जग्ग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयणं भगवयासुकहियं'

(प्रश्न व्याकरण सूत्र, संवर द्वार)

अर्थात्:—संसार के समस्त जीवों की रक्षा रूप तथा दया करने के लिये भगवान् तीर्थङ्कर देव ने प्रवचन (जिनागम) कहा है।

देखिये ! जैनागम के कहने का उद्देश्य भगवान् ने संसार के समस्त जीवों की रक्षा करना और दया करना ही रखा है। जैन धर्म का उद्देश्य ही:—प्राणी की प्राण रक्षा करना है। जिस कार्य को भगवान् परम धर्म कहते हैं उसे ये (तेरापंथी) एकान्त पाप का कार्य बतलाते हैं। जैन धर्म के नाम से इस तरह मिथ्या भाषण करना कितना गहरा दयाधर्म का अपमान करना है ? अन्य तीर्थी का धर्म बतलाना दया का नाश करना है। देखिये तीर्थ प्रवर्ताने का उद्देश्य:—

"सव्व जग्ग जीव हियं अरहं तित्थं पव्वत्ते हिं" ॥

(आचाराङ्ग सूत्र, अ० २४, गा० ६)

अर्थात् :—जिस समय भगवान् दीक्षा लेने लगते हैं, उस समय लौकान्तिक देवता भगवान् के पास आकर प्रार्थना करते हैं कि :—हे अरिहन्त देव ! सब जगत् के जीवों के कल्याण के लिये (रक्षा के निमित्त अथवा हित के लिये) तीर्थ प्रवर्त्ताओ।

तीर्थ प्रवर्त्ताने में भी जगत् के सब जीवों का कल्याण ही निहित होता है। क्योंकि :—तीर्थङ्कर देव अपनी आत्मा के कल्याण के बाद संसार के कल्याण का उद्देश्य सम्मुख रखकर दया धर्म का प्रचार करते हैं। अब आप देखिये कि :—जैन-धर्म की अहिंसा क्या वस्तु है ?

"तत्थ पढमं अहिंसा तस थावर सव्वभूय खेमकरी" ॥

(प्रश्न व्याकरण सूत्र)

अर्थ :—सब से प्रथम अहिंसा धर्म है, जो त्रस और स्थावर तथा सर्व जीवों के क्षेम और शान्ति चाहने से पालन होता है। यत :—अहिंसा सब त्रस और स्थावर जीवों को क्षेम और शांति प्रदान करती है। अतः त्रस और स्थावर जीवों की शान्ति चाहने के बिना अहिंसा का पालन नहीं हो सकता ॥ जो तेरापंथी यह कहते हैं कि "भगवान् ने प्राणी की प्राण रक्षा के लिये तथा जीवों की शान्ति के निमित्त उपदेश नहीं दिया, परन्तु उन्होंने तो तारने के लिये उपदेश दिया है। क्योंकि :—शान्ति और रक्षा के लिये उपदेश देना एकान्त पाप करना है"। किन्तु तेरापंथियों को यह तो सोचना चाहिये कि :—शान्ति और रक्षा किये बिना भी कभी किसी का कल्याण हुआ है? जब तक किसी के हृदय में शांति का संचार ही नहीं तथा रक्षा करने के भावों का सर्वथा ही लोप है तो उसका तरना कैसे सम्भव है रक्षा तथा दया किये बिना किसी का भी कल्याण नहीं हो सकता। इन बातों की उलझन में तेरापँथी सँसार को चकमा देना चाहते हैं। परन्तु ऐसा होना असम्भव होगा। जब तक हमारे पास सूत्रों का ज्ञानालोक (ज्ञान रूपी प्रकाश) विराजमान है—तब तक वे समाज को अपने झाँसै में नहीं फँसा सकते। देखिये :—भगवान् महावीर स्वयं त्रस और स्थावर जीवों की क्षेम-कुशल चाहते थे। यथा :—

"समिच्च लोगंत्तस थावराणां खेमंकरे समणे माहणे वा आइक्खमाणेऽवि सहस्स मज्झे एगंतयं सारयति तहच्चे"

(सुयगडांग सूत्र, अ० २२, गा० ४)

अर्थ :—भगवान् महावीर त्रस=वे इन्द्रियादि तथा स्थावर= एकेन्द्रियादि जीवों की क्षेम अर्थात् = रक्षा करने वाले थे। (क्षेमः — कल्याणं, रक्षावा, तत्करण शीलः—स्वभावो यस्येति स क्षेमङ्करः) भगवान् जीवों की रक्षा के लिये ही धर्मोपदेश करते थे। भगवान् महावीर हजारों देवताओं, असुरों और मनुष्यों के मध्य में भी राग, द्वेष रहित होते हुए तथा एकान्त भाव सेवन करते हुए एकाकी भाव में ही विचरते थे।

इस गाथा से स्पष्ट है कि :—भगवान् महावीर स्वामी भी त्रस और स्थावर, सम्पूर्ण प्राणियों के क्षेम—यानि रक्षा करने वाले थे। और भगवान् मरते हुए प्राणियों की रक्षा के लिये धर्मोपदेश देते थे। किन्तु तेरापन्थियों को प्राणी की प्राणरक्षा करने में भी एकान्त पाप लगने लग पड़ा है। यह एक अत्याश्चर्य की बात है कि :—ये भगवान् की क्यों दुहाई देते हैं उनका नाम रखकर जैन समाज को कलँकित करना उनके लिये श्रेयरकर न होगा। यह मनुष्यत्व नहीं अपितु मनुष्यत्व का अपमान है। यह एक गौरव पूर्ण जैन समाज पर कलङ्क है। मैं विश्वास रखता हूं कि :—जब तक यह काला धब्बा धो २ कर साफ न किया जायगा तब तक भगवान् के सच्चे उपासक को आराम न मिलेगा। अगर उस सच्चे उपासक के पास जीवन है तो इस धब्बे को मिटाने के लिये उसे निजी जीवन भी न्यौछावर करना होगा, प्राण हैं तो इस धर्म यज्ञ में प्राणों की भी आहुति देनी होगी, किन्तु वह इन आंखों से इस कलङ्क को न देख सकेगा। वह तो भगवान् के अमृतोपम

वाक्य घर २ में सुनाकर रहेगा। उसकी पहली घोषणा यह होगी कि :— तेरापँथ जैन नहीं, अपितु वह जैन-धर्म पर कलङ्क है। वह उन पूज्य साधु महात्माओं की अमर गाथा सुनायेगा, जिनकी अमर कथा को आज तक पर्वत कन्दराएँ और बनों की तलहटियां गाती फिरी हैं। जिन्होंने हिंसक के हाथों से मारे जाने वाले प्राणियों की प्राण रक्षा के निमित्त बड़े २ लम्बे और भयानक मार्ग तय किये और परदेशों में जाकर दया-धर्म का डिण्डिमनाद बजाया। मरते हुए हजारों, लाखों पशुओं की तथा मनुष्यों की रक्षा की जिनमें से एक महात्मा हैं श्रमण केशी कुमार। जिन्होंने अपने पवित्र दयामय उपदेश से हिंसक के हिंसक हाथों को रक्षक बना दिया। गरीबों की एक मात्र उदर पोषक सामग्री को भी निर्दयता से लूट लेने वाले हाथों को दान देना सिखा दिया। कितना महान उपकार है उन पूज्य महर्षियों का जिन्होंने अपने उपदेश से ही अहिंसा का मार्ग निष्कण्टक बना दिखाया। देखिये :—

सूत्र प्रमाण :—

"जइणं देवाणुप्पिया! पए सिस्स रण्णो धम्म माई क्खेज्जा वहु गुण तरं खलु होज्जा। पए सिस्स रण्णो ते सिं च वहुणं दुप्पय च उप्पय मिय पसुपक्खी सरीखवाणं तं जइ देवाणुप्पिया! पए सिस्स रण्णो धम्म माइक्खेज्जा वहु गुणतरं फल होज्जा ते सिं च वहुणं समण-माहण भिक्खुयाणं तं जइणं देवाणुप्पिया! पए सिस्स वहु गुणतरं होज्जा सव्वस्स वि जण वयस्स।

(राजप्रश्नीय सूत्र)

अर्थः—हे ! देवानुप्रिय आप यदि प्रदेशी राजा को धर्म सुनावें तो बहुत गुणयुक्त फल हो। गुणयुक्त फल स्वयं राजा को हो, और राजा प्रदेशी के हाथों से मारे जाने वाले बहुत से द्विपद् (मनुष्य) चतुष्पद् (हाथी, घोड़ा आदि चार पैर वाले) मृग, पशु, बनचर आदि को, पत्ती, तित्तर, वटेर आदि को और सरीसृपों (सांपों) को, बहुत गुणयुक्त फल हो। अर्थात्:—उनके प्राण बच सकेंगे और उन्हें शान्ति मिलेगी। हे ! देवानुप्रिय यदि आप राजा प्रदेशी को दयामय निर्ग्रन्थ धर्म सुनावें तो बहुत से साधु-सन्यासियों को तथा गृहस्थी और भिखमंगों को, और राजा प्रदेशी को बहुत गुण-युक्त फल हो। अर्थात्:—असंख्य प्राणियों की प्राण-रक्षा करने से राष्ट्र में हिंसक वृत्तियों का दमन होगा। और समस्त प्रजाजनों में सद्भावना उत्पन्न होगी।"

इस मूल पाठ में राजा प्रदेशी को धर्म सुनाने से राजा प्रदेशी और उसके हाथों से मारे जाने वाले द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पत्ती और सरीसृप आदि सब के लिये ही गुणयुक्त फल का होना कहा गया है। इसका भाव यह है कि:—राजा प्रदेशी को धर्म सुनाने से वह हिंसा करनी छोड़ देगा अतः वह तो हिंसा के पाप से बच सकेगा। और उसके हाथ से मारे जाने वाले द्विपद आदि प्राणियों की प्राण-रक्षा हो सकेगी। इसलिये राजा प्रदेशी को तो हिंसा के पाप से बचने का गुण है। और उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों के प्राणों की रक्षा हो जाना ही गुण है। इन दोनों के लाभ के लिये चित्त प्रधान ने चार ज्ञान के

धारक श्रमण केशीकुमार से प्रार्थना की कि:—महाराज! राजा प्रदेशी को धर्म सुनावें।

इस पाठ से यह सिद्ध होता है कि:—साधु महात्मा केवल हिंसा के पाप से बचाने के लिये ही धर्मोपदेश नहीं देते, अपितु प्राणियों की प्राण रक्षा के लिये भी धर्मोपदेश देते हैं।

अगर कोई कहे कि:—यह प्रार्थना तो गृहस्थी ने की है। गृहस्थी कैसे ही क्यों न करदे उसे सब प्रकार से छूट है। अतः इससे प्राणी की प्राण रक्षा करना सिद्ध नहीं होता।

उत्तरः—चित्त प्रधान कोई साधारण मनुष्य नहीं था। उसके धार्मिक ज्ञान की भगवान् ने भी बड़ी प्रशंसा की है। वह द्वादश व्रतधारी जीवाजीव और पुण्य, पाप का ज्ञाता था। वह हेयोपादेय को जानता था। ऐसा भगवान् ने फरमाया है। ऐसा मनुष्य पाप-कारी प्रार्थना कभी भी नहीं कर सकता और न ही केशी स्वामी उसकी प्रार्थना स्वीकार करते। परन्तु केशी कुमार श्रमण ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और मार्ग के भयानक कष्टों को पार करके श्वेताम्बिका नगरी में गये। जाकर प्रदेशी राजा को जीव-रक्षारूप परम धर्म का गूढ़ रहस्य समझाया।

तेरापंथी बताएं कि:—वे जीव बचाने में पाप किस सिद्धान्तानुसार कहते हैं। भगवान् ने जो ज्ञाता सूत्र में फरमाया है कि:—

एक सहे की रक्षा करने से तथा अन्य जीवों की अनुकम्पा

करने से मेघ कुमार ने हाथी के भव में संसार परित्त (परमित) किया। और मनुष्य की आयु का बन्ध किया तथा सर्व-प्रथम सम्यक्त्व की उपलब्धि की। यथा :—

"तएणं तुमँ मेहा ! गायँ कण्डुइत्ता पुण रवि पायँ पडिणिक्खमिस्सामीति कट्टु तँ सँसयँ अणुपविट्ठँ पासइ पासइत्ता पाणानुकम्पयाए, भूयाणुकम्पयाए, जीवाणु कम्पयाए, सत्ताणुकम्पयाए, से पाए अन्तरा चेव सँधारिए णो चेवणं णिक्खित्ते ॥

तएणं तुमँ मेहा ! ताए पाणानुकम्पायाए जाव सत्ताणुकम्पयाए, सँसार परितीकए मणुस्साउ ए णिबध्दे।

तं जइ ताव तुमं मेहा तिरिक्ख जोणिय भाव मुवागएणं अपडिलद्ध सम्मत्तरयण लभेणं से पाए पाणानुकम्प पाए जाव अन्तरा सेव संधारिए॥ (ज्ञाता सूत्र अ० १)

अर्थात:—हे मेघ! तूने शरीर के अंग को खुजलाकर अपने पांव को नीचे रखने का विचार किया। किन्तु जब तूने पैर रखना प्रारम्भ किया उस समय तुझे पैर से किसी कोमल वस्तु के स्पर्श का अनुभव सा हुआ। जब तूने दृष्टि डालकर देखा तो तुझे विदित हुआ कि:—मेरे पैर रखने वाली जगह पर एक शशक बैठा है। तूने विचार किया कि:—इस निर्बल शशक को सारे मण्डल में कोई जगह नहीं मिली होगी, अतः यह भयभीत सा होकर मेरे पैर वाले रिक्त स्थान पर बैठ गया है। अब मेरा धर्म यही है कि:—इसकी प्राण रक्षा करूं। यह मेरी शरण में आ-

चुका है। हाथी के हृदय में करुणा की गंगा बह निकली। हे मेघ ! माता दया तेरे अन्तस् के अणु २ प्रदेश के द्वार पर खट-खटाने लग पड़ी। तूने उस शशक पर तो अनुकम्पा की ही, साथ में उन सब सत्व, भूत, जीव और प्राणियों की रक्षा भी अन्तः-करण से की। उन प्राणियों और उस निर्बल से प्राणी शशक के लिये शारीरिक मोह को त्याग दिया स्वार्थ को तिलाञ्जलि दे दी। शशक की मूक और हृदय विद्रावक पुकार तूने अपनी पुकार समझी। निःस्वार्थ भाव से प्राणी की प्राण रक्षा करना तूने अपना परम धर्म समझा और उसके लिये तूने अपना प्यारा जीवन उत्सर्ग कर दिया। जब तूने इस गूढ़ रहस्य को सम्यक् समझ लिया कि:—"अपना पैर सहे पर रख देना या क्रूरता से खून कर देना अपनी आत्मा का खून कर देना है, तो तेरे जन्म--जन्मान्तरों की उलझी हुई गुत्थी कुछ ही क्षणों में सुलझ गई। तेरा वह भारी पैर ऊपर ही खड़ा रहा। तेरा शरीर दुःखित था। तीव्र चीसें पड़ती थीं, अङ्ग-प्रत्यङ्ग टूटता था परन्तु तूने कुछ भी ध्यान न दिया। तेरा ध्यान सदा उसकी रक्षा करने में लगा रहा। अन्त में वह पैर अपनी चेतना शक्ति के साथ सम्बन्ध तोड़ बैठा, अकड़ गया किन्तु तू निश्चिन्त खड़ा रहा। जब तक दावानल बन की लकड़ियों को धाँय धाँय करके फूंकता रहा, तब तक तू प्राणियों की, जीवों की व सत्वों की तथा उस सहे की अपना पैर ऊपर उठाकर अनुकम्पा तथा रक्षा करता रहा। उस अनुकम्पा के फल से तूने संसार को

परित्त किया और मनुष्य की आयु बांधी ।

अहो मेघ ! जब तू तिर्यञ्च योनि में था उस समय तुझे अपूर्व—तथा अलभ्य वस्तु प्राप्त हुई । वह था सम्यक्त्व रत्न जो तुझे प्राप्त हुआ । जब तूने प्राणियों की अनुकम्पा के लिये अपना पैर बीच में ही उठा रखा था, उस समय तुझे प्रथम सम्यग्दृष्टि प्राप्त हुई ।

ठीक भी है, संसार में ऐसे ही जीव पार उतर सकते हैं । जो अपने शरीर की परवाह न करते हुए प्राणियों की रक्षा करें । परन्तु जो लोग जीव रक्षा में पाप समझते हैं उन्हें यह शास्त्र का मूल पाठ देख लेना चाहिये । और साथ में ही चुल्लूभर प्रासुक पानी में अपनी निर्दयी आंखें डुबो कर अपना चेहरा देखना चाहिये । देखो तो सही, मुंह पर कितने काले २ बादल उड़ रहे हैं । किस प्रकार गिरगिट की तरह चेहरा रंग बदल रहा है । अरे ! संसार भर के निर्दयियो ! क्यों भोली जनता को फुसला कर पाप के गट्ठड़ बांध रहे हो ? क्यों कुतर्क लड़ा २ कर अपना हीरा जन्म बरबाद कर रहे हो । देखिये कुतर्क का नमूना :—

तेरापंथी :—उस हाथी ने अपनी आत्मा की अनुकम्पा करी । अपनी आत्मा को पाप से बचा लिया, उस शशक (सहे) पर दया नहीं करी । अगर दया करता तो दावानल में से भागते फिरते प्राणियों को सूंड से पकड़ २ लाता । यथाः —

"कष्ट सह्यो तिण पाप से डरतो, मन दृढ़ सेंठि राखी तिणकाय
बलता जीव दावानल देखी सूंडसूं ग्रही ग्रही बाहिरे न लाया॥ १

(भीखर्न कृत, अनुकम्पा ढाल)

इस पद्य का का भाव ऊपर दिया गया है।

"भीखन जी ने यह अपभाषण किया है कि:—दावानल में जलते हुए जीवों को सूंड से क्यों नहीं पकड़ कर लाया जबकि उसने दूसरे जीवों की ही अनुकम्पा करनी थी।

उत्तर:—उसने आग में जलते हुए जीव देखे और उन्हें उस हाथी ने नहीं बचाया" इस बात का भी भीखन जी के पास यदि कोई प्रमाण हो तो दिखाना चाहिये। यदि नहीं तो इस प्रकार असत्य अपभाषण अनुचित है। वास्तव में उसने आग में जलता हुआ जीव कोई नहीं देखा, अगर देखता तो अवश्य अपने प्राण-पण से भी बचाता। क्योंकि:—वह वन मण्डल चार कोस मुरब्बा था। जो कि वनचर जीवों से परिपूर्ण और खचाखच भरा हुआ था। जिनके मध्य में मेघकुमार का जीव हाथी के रूप में खड़ा था। आस पास के सब के सब बनैले वनचर जीव वहां शान्तता से खड़े हुए थे। एक शशक (सहा) जिसे कहीं भी स्थान नहीं मिलता था। उछलता कूदता हाथी के पैर वाली जगह खाली समझ कर वहां पर आकर बैठ गया और उस हाथी ने उसकी रक्षा के लिये अपने पैर को ऊपर उठा रखा। अगर तेरापंथी फिर भी उसे यही कहें कि:—उसने अपनी ही अनुकम्पा

करी है, सहे की नहीं तो तेरापंथियों को यह ध्यान से देख लेना चाहिये कि:—शास्त्र के मूल पाठ में "अपनी अनुकम्पा" का निर्देशक एक भी अक्षर अगर आया हो तो ठीक है नहीं तो उन्हें फिर अपने अपने मुँह की खानी पड़ेगी। क्योंकि:—शास्त्र में तो स्पष्ट है कि हे मेघ! तू ने सहे की और अन्य प्राणियों की अनुकम्पा करी थी। इसलिये तू ने संसार परित्त किया और मनुष्य की आयु बांधी। तेरापंथियों को मूलपाठ पढ़ कर भी ऐसे अनर्थ नहीं करने चाहिये। यत:—अनर्थ करना पाप का संचय करना है।

द्वितीय कुतर्क

तेरापंथी:—अगर उस हाथी ने शशक की रक्षा करनी थी या अनुकम्पा करनी थी तो उसे सूंड से पकड़ कर अपने कन्धे पर, या शिर पर, अथवा पीठ पर बिठा लेना चाहिये था। किन्तु उसने ऐसा किया नहीं। अत: उसने शशक की अनुकम्पा नहीं करी, अपितु उसने अपनी ही अनुकम्पा करी है।

उत्तर:—बात तो तेरापंथियों की सही है, किन्तु तेरापंथी यह तो बताएं कि:—अगर वह सूंड से उठा लेता, और मार्ग में वह शशक अचानक सूंड से छूट जाता, अथवा शशक स्वयं ही सूंड में फँस कर भयभीत हुआ प्राण त्याग बैठता, अथवा सूंड से ही कस कर पकड़ा जाता और उसका प्राणान्त हो जाता तो क्या उस पाप के जुम्मेवार तेरापंथी होते? अरे! ये बातें तो हाथी ने भी खूब सोची होंगी. परन्तु सब से बढ़ कर उसकी रक्षा का यही ठीक उपाय था। बेशक उसकी रक्षा के लिये उसे अपना शरीर

ही बलिदान कर देना पड़ा। तभी तो वह इस दुस्तर संसार से पार हो गया। अगर तेरापंथियों जैसे महानुभाव उसे मिले होते तो उसे पूरा निर्दयी बनाकर छोड़ते। परन्तु उसे तो स्थानक वासी साधुओं की संगति और दयामय उपदेश याद आगया था अतः तेरापंथियों जैसा निर्दयी कैसे बन जाता ? (दूसरा प्रमाण)

देखिये:—दान को तो तेरापंथी भी दश प्रकार का ही मानते हैं। किन्तु उन दस दानों में से एक धर्म दान को छोड़कर शेष सर्व दानों को अधर्म और पापकारी गिनते हैं। न जाने यह दान-भेद समझ कर भी तेरापंथियों की बुद्धि पर पीछे से क्या पत्थर पड़ जाते हैं। देखिये:—

"दशविहे दाणे पण्णत्ते तं जहा:—

अनुकम्पा संग्गहे चेव, भए कालुणि एति च।

लज्जाए गार वेणं च, अधम्मे पुण सत्तमे।

धम्मे त अट्ठमे वुत्ते, काहती ति कतंति त॥

(ठाणाङ्ग सूत्र, ठाणा १० उ० ३)

अर्थ:—दान दस प्रकार के होते हैं:—

(१) अनुकम्पा दान, (२) संग्रह दान, (३) भय दान, (४) कारुण्य दान, (५) लज्जा दान, (६) गौरव दान, (७) अधर्म दान, (८) धर्म दान, (९) करिष्याति दान, (१०) कृत दान।

इन दानों के विषय में पाठक पहिले भ्रम विध्वंस का मत पढ़लें। जैसे कि:—उन्होंने भ्रम विध्वंसन पृ० ७६ पर लिखा:—

"अथ इहां दश प्रकार रा दान कह्या, तिणमें धर्मदान री

आज्ञा छै। ते निरवद्य छै। वीजा नव दान री आज्ञा न देवे ते माटे सावद्य छै। एव नव दाना में धर्म-पुण्य मिश्र नहीं छै"

इनका आशय यह है :—कि इन दश दानों में एक धर्म दान ही भगवान् की आज्ञा में है। वह ही पुण्योत्पादक है। और शेष नव दोनों में एक मात्र पाप ही पाप है। पुण्य या धर्म आदि मिश्र नहीं हैं। धर्म दान ही पुण्य क्षेत्र है। शेष नव-दान पाप क्षेत्र हैं।

इस विषय में स्वय कुछ कहने से पहले मैं "सद्धर्म मण्डन" की उक्तियां और युक्तियां दे देना अच्छा समझता हूँ। देखिये:—

"धर्म दान को छोड़कर शेष नव दानों को अधर्म दान में गिनना शास्त्र विरुद्ध है। शास्त्रकार ने दश ही दानों को परस्पर विलक्षण और एक में दूसरे का समावेश न होना बतलाया है। यदि धर्म-दान को छोड़कर शेष नौ दान अधर्म-दान के भेद होते तो शास्त्रकार यह लिखते कि :—"दुविहे दाणे पण्णत्ते तं जहा:—धम्मे दाणे चेव अधम्मे दाणे चेव"। यह लिखकर पश्चात् अनुकम्पा आदि दानों का अधर्म-दान में समावेश कर देते, परन्तु ऐसा न करके शास्त्रकार ने जो दान के दस भेद बताए हैं, इससे अनुकम्पा आदि दानों का पार्थक्य स्वयं सिद्ध हो जाता है। दूसरी बात यह है कि :—इन दस दानों के नाम गुणानुसार रखे गये हैं। ······इस बात को तो भीखन जी ने भी स्वीकार किया है। जैसे कि उन्होंने लिखा है :—

"दश दान भगवंत भाषिया सूत्र ठाणाङ्ग माय।
गुण निष्पन्न नाम छै तेहनो, भोलाँने खबर न काय॥
(भीखनजी)

इस पद्य में दश दानों का गुणानुसार नाम होना स्वयं भीखन जी ने भीं स्वीकार किया है। ऐसी परिस्थिति में धर्म दान को छोड़कर शेष नौ दानों को अधर्म-दान में बतलाना जीतमल जी का अपने गुरु के साथ विरोध करना है।

जो लोग एक धर्मदान को छोड़कर शेष नौ दानों को अधर्म में गिनते हैं उनसे कहना चाहिये कि :—जो दान भक्ति-भाव से प्रत्युपकार की आशा के बिना पंचमहाव्रतधारी साधु को दिया जाता है, मुख्य रूप से वही एकान्त धर्म-दान है। परन्तु जो लज्जावश या अनुकम्पा से साधु को दिया जाता है वह दान-दाता के परिणामानुसार मुख्य रूप से लज्जा-दान और अनुकम्पा दान है। यह दान धर्म-दान से कथञ्चित् भिन्न है। क्योंकि इसमें दाता का परिणाम लज्जा और अनुकम्पा भी है। अतः तेरा-पंथियों की मान्यताऽनुसार इस दान का फल अधर्म ही होना चाहिये। यदि कहो कि :—"किसी भी परिणाम से साधु को दान देना एकान्त धर्म-दान है, इसलिये उक्त दानों का फल अधर्म नहीं है। तो नाग श्री ब्राह्मणी ने मुनि को मारने के परिणाम से कडुआ तुम्बा का शाक दिया था और साहूकार की स्त्री ने विषयभोग कराने की लालसा से अर्णक मुनि को मोदक दिये

थे फिर इन दानों का फल भी अधर्म न होना चाहिये। यदि कहो कि :—नागश्री ने मुनि को मारने के परिणाम से और साहूकार की स्त्री ने मुनि को भ्रष्ट करने की इच्छा से दान दिया था, इसलिये उनके दान उनके परिणाम अनुसार अधर्म-दान थे धर्मदान नहीं, तो उसी तरह यह भी समझो कि :—जो दान लज्जावश या अनुकम्पा करके मुनि को दिया जाता है वह भी दाता के परिणाम अनुसार लज्जादान और अनुकम्पा-दान ही है। तुम्हारे सिद्धान्त अनुसार इन दोनों में भी अधर्म ही होना चाहिये था। परन्तु यह शास्त्र सम्मत नहीं है। यतः इन दोनों दानों में भी दाता के परिणाम अनुसार धर्म ही होता है। अतः धर्म-दान को छोड़कर शेष नौ दानों को अधर्म में कायम करना अज्ञानता है। क्योंकि :—भगवान् ने तो अनुकम्पा-दान साधु के लिये भी फरमाया है। देखिये सूत्र प्रमाण :—

"अणुकम्पं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा।
तवस्सि पडिणीए, गिलाण पडिनीए, सेह-पडिणीए"॥

(ठाणाङ्ग सूत्र, ठाणा ३ उद्देशा ४)

अर्थात्:—तीन मनुष्य अनुकम्पा करने योग्य होते हैं। तपस्वी क्षपक, रोग आदि से ग्लान और नवदीक्षित शिष्य इनकी अनुकम्पा अगर साधु न करे और न करावे तो वह वैरी समझा जाता है।

इस पाठ के अनुसार उपरोक्त तीन पुरुषों को भी जो साधु अनुकम्पा-दान नहीं देता वह वैरी समझा जाता है परन्तु तेरा-

पंथी मत-अनुसार तो यह अनुकम्पा-दान भी अधर्म में शामिल है, अतः इसे करना पाप-संचय करना है किन्तु भगवान् आज्ञा देते हैं कि :—अगर साधु इनकी अनुकम्पा न करे अर्थात् :— इन्हें अनुकम्पा दान न दे तो साधु वैरी समझा जायगा। अतः अन्त में तेरापंथ के सिद्धान्त को हेय ही समझना पड़ेगा। क्योंकि भगवात् अनुकम्पा-दान का फल साता वेदनीय कर्म का बन्ध होना बतलाते हैं :—और अनुकम्पा न करने से असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है ऐसा फ़रमाते हैं। अनुकम्पा करने में पुण्य और न करने में एकान्त पाप। देखिये पाठ प्रमाण :—

"अत्थिणं भंते ! जीवाणं साया वेयणिज्जा कम्माकज्जन्ति ? हन्ता अत्थि। कहएणं भंते ! साया वेयणिज्जा कम्मा कज्जन्ति। गोयमा ! पाणाणुकम्पयाए, भूयाणुकम्पयाए, जीवाणु कम्पयाए, सत्ताणुकम्पयाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अप्पिट्टणाए, अपरि-यावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं साया वेयणिज्जा कम्मा कज्जन्ति ॥ (भगवती सूत्र श० ७ उ० ६)

अर्थ :—अहो भगवन् ! क्या जीव साता वेदनीय कर्म का उपार्जन किसी उपाय से करता है ? हां गोतम ! मनुष्य साता-वेदनीय कर्म का उपार्जन करता है अहो भगवन् ! जीव किस प्रकार से सातावेदनीय कर्म का उपार्जन करता है ?

अहो गोतम ! प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व की अनुकम्पा करने से अर्थात् :—प्राणियों की प्राण रक्षा करने से, इनका

दुःख मिटाने से, मरते जीव को अनुकम्पा-दान देने से दाता साता वेदनीय कर्म का उपार्जन करता है। प्राणी भूत, जीव और सत्त्व का दुःख दूर करने से, शोक आदि से अश्रु आदि न गिराने सेयष्टि आदि से ताड़न न करने से, इनका परिताप दूर करने से, सातावेदनीय कर्म का उपार्जन करता है।

अब अनुकम्पा के विषय में भ्रम विध्वसन के शब्द पढ़िये :—

"अनुकम्पा दान कृपा ये करी दीन अनाथा ने जे दीजे ते पिण कनुकम्पा कहिये। कोई राँक अनाथा दराद्री कष्ट पड्या रोग शोके हैराणा नें अनुकम्पादीजे अनुकम्पादान।"

अर्थात् :—दीन, अनाथ को दुःखी भुखी देख कर उसके दुःख और रोग शोक आदि को मिटाने के लिये जो सहायतार्थ दान दिया जाता है उसे अनुकम्पादान कहते हैं। ठीक अनुकम्पा का लक्षण भी यही है। परन्तु तेरापथी अनुकम्पा-दान में एकांत पाप पता नहीं किस शास्त्र अनुसार कह देते हैं। जब कि भगवान् अनुकम्पा का फल एकान्त पुण्य फरमाते हैं।

तेरापंथी आगे चलकर अनुकम्पा के दो भेद घड़ते हैं :— अनुकम्पा दो प्रकार की होती है :—सावद्य अनुकम्पा और निरवद्य अनुकम्पा॥ अब इनके लक्षण भी पढ़ लीजिये :—

हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राण रक्षा करने के लिये उपदेश देना और उसको बचाने के लिये उपदेश देना और उसको बचाने के लिये प्रयत्न करना सावद्य अनुकम्पा

करना है। अर्थात् :—वह पापकारी अनुकम्पा है। और तारने के लिये उपदेश देना निरवद्य अनुकम्पा है।

प्रथम तो अनुकम्पा के ये भेद ही शास्त्र विरुद्ध हैं क्योंकि :— शास्त्र में अनुकम्पा के दो भेद कहीं भी नहीं कहे गये हैं। अतः अनुकम्पा को सावद्य और निरवद्य बताना शास्त्र का विरोध करना है। अनुकम्पा को सावद्य बताना कितना अनर्थ है। क्या एकान्त पुण्योत्पादिका अनुकम्पा भी पाप कारिणी हो सकती है?

यदि किसी के प्राणों की रक्षा के लिये प्रयत्न करना सावद्य अनुकम्पा है? तो देखिये :— साधु जो शुद्ध आहार ग्रहण करता है उसमें पृथ्वी और त्रस काय के प्राणों की रक्षा ही निहित होती है। देखिये :—

"फासु एसाणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं नाईक्कमइ आयाए धम्म अणइक्कममाणे पुढविकायं अवकंखइ जाव तसकायं अवकंखइ।"

(भगवती सूत्र श० १ उ० ६)

अर्थ :—जो साधु प्रासुक और एषणिक आहार लेता है वह अपने धर्म का उल्लङ्घन नहीं करता और अपने धर्म का उल्लङ्घन न करता हुआ साधु पृथिवीकाय से लेकर त्रसकाय यावत् की प्राण रक्षा चाहता है।

इस पाठ में "पुढविकायं अवकंखइ जाव तसकायं अवकंखइ" जो ये वाक्य आए हैं :—इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि साधु पृथिवीकाय से लेकर त्रसकाय तक के प्राणियों की प्राण रक्षा

करने के लिये ही शुद्ध, एषणिक, प्रासुक आहार ग्रहण करता है। अतः भगवान् तो जैनागम का उद्देश्य ही यह बताते हैं कि :— "संसार के समस्त जीवों की रक्षा और दया के लिये ही जैनागम प्रवर्तित हुआ है" और पंच महाव्रतधारी साधु पृथिवी और त्रस-काय के जीवों की प्राण रक्षा करनेके लिये शुद्ध आहारकरता है।

उसे तेरापंथी साधु पाप कारिणी अनुकम्पा बतलाते हैं। यह उनकी बुद्धि का फेर है। अगर तेरापंथी अब भी गल पड़ा ढोल पीटते रहेंगे तो सम्भव है कि :—ढोल शीघ्र ही फूट जायगा। और संसार के सामने खिसियाना होना पड़ेगा। और इससे इन्हें ही नहीं अपितु हमें भी दुःख होगा कि :—इन्होंने जैन-धर्म को निन्दित करना चाहा था किंतु स्वयमेव निन्दा के भाजनहोना पड़ा।

इससे अच्छा है कि :—उन्हें आज से ही अपनी कुश्रद्धा दूर कर देनी चाहिये और भगवान् के सच्चे मार्ग का पथिक बन जाना चाहिये। हां इसमें इन्हें एक तो विशेष कष्ट होगा कि :— जो भोली भाली जनता अपने आँचल में फँसा रखी है उसे अवश्य छोड़ना होगा। और उनके समक्ष ही अपने कुकर्त्तव्य पर दो आंसू बहाने होंगे। अथच जो इन्होंने शास्त्र विरुद्ध बोलने का नियम सा ले रखा है उसे भी त्यागना होगा। और उन्हें यह मानना पड़ेगा कि :—जैन धर्म का उद्देश्य ससार के समस्त जीवों की रक्षा और दया करना ही है। यह सत्य है कि :—यह तब माना जायगा जब कि इन्हें भगवान् के प्रवचनों पर और शास्त्रों पर पूर्ण श्रद्धा होगी।

मेरी बार २ यही चेतावनी है कि :—तेरापंथियों को यह पाठ कण्ठस्थ ही कर लेना चाहिये :—

"सव्व जग्ग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं"। (प्रश्न व्याकरण सूत्र)

अर्थात् :—संसार के समस्त जीवों की रक्षा और दया करने के लिये ही जैनागमन भगवान् का प्रवचन अवतरित हुआ है।

अगर उन्होंने इसी प्रकार भगवान् के विरुद्ध अपभाषण ही करना है और जैन-धर्म के मुख्य सिद्धान्त द ा का नाश ही करना है तो मैं उन्हें चेतावनी देता हूं कि इन्हें तैयार हो जाना चाहिये और सदा के लिये इस तरह से उनका कुछ बन भी सकेगा।

दया, अनुकम्पा और रक्षा ये तीनों ही नाम ऐसी अमर वस्तु के हैं। जो न मिटे और जिसे न कोई मिटा सके! दया के नाशकों को समझ लेना चाहिये कि :—दया का नाश करना अपनी आत्मा को मोह सागर में निमज्जित करना है। दया अन्त तक विजयवती होगी। संसार इसका लोहा मानेगा और माता दया का स्वर्णमय ध्वज संसार के कोणे २ पर लहरायगा। देवता भी जय जयकार करेंगे। और पंजाबी वीर की सिंह गर्जना फिर अपने पूर्ण बल से गूंजेगी :—

"वन्दे दयामातरम्"

॥ शमस्तु ॥

॥ इति पूर्वो भागः ॥

क्या मिथ्यात्वी की क्रिया आज्ञा में है?

संसार में एक कहावत प्रसिद्ध है, कि मनुष्य अगर एक बार भूठ बोलता है; तो उसे उस भूठ को छिपाने के लिये सौ बार भूठ बोलना पड़ता है।

इसी प्रकार तेरा पंथियों ने स्वार्थवश पहला सिद्धान्त घड़ा, कि, "साधु के सिवा सब कुपात्र छै, कुपात्र को दान देना महा-पाप है।" नौ प्रकार का पुण्य भी साधु को देने से ही पैदा हो सकता है, यह कल्पना कर लेने के बाद अब पुण्य का राजमार्ग ही बन्द हो गया।

संसार का कोई प्राणी बिना साधु को दिए हुए दान के पुण्य पैदा कर ही नहीं सकता, और साधु भी तेरापंथी; क्यों कि उनके सिवा तो और सब साधु असाधु ठहरे। इस बात से तेरापंथियों को फिर घबराहट हुई, कि संसार का प्रत्येक प्राणी पाप ही पाप करने लग पड़ा केवल हमें छोड़ कर, अतः इन्हें फिर मिथ्यात्वी की तप, जप आदि, करणी भगवान् की आज्ञा में स्वीकार करनी पड़ी, किन्तु फिर श्रुत और चारित्र धर्म ने इस कल्पना का खण्डन कर दिया। क्योंकि, श्रत और चारित्र धर्म का सम्यग दृष्टि ही

पालन कर सकता है, मिथ्या दृष्टि नहीं। अतः फिर इन्हें श्रुत और चारित्र धर्म को त्यागना पड़ा और अपने नए सिद्धान्त की कल्पना करनी पड़ी। जैसेः—धर्म के दो भेद संवर और निर्जरा ही हैं, श्रुत और चारित्र नहीं। पाठक समझ गए होंगे कि मिथ्यात्वी की क्रिया भगवान् की आज्ञा में तेरा पंथियों को किन मजबूरियों से माननी पड़ी।

अच्छा अब आप मिथ्यात्वी के विषय में भी कुछ जान लें। मिथ्यात्वी का सीधा अर्थ तो यह है, जो सच्ची बात को झूठी, और झूठी बात को सच्ची माने; उसे मिथ्यात्वी कहा जाता है। मोटे शब्दों में उलट मतिवाल मनुष्य शास्त्रकार के सिद्धान्त से, धर्म को अधर्म समझे, और अधर्म को धर्म समझे, पुण्य को पाप, और पाप को पुण्य, साधु को असाधु, और असाधु को साधु, इत्यादि।

ऐसे उलट मति वाले मनुष्य को मिथ्यात्वी कहा जाता है। तेरापंथी उलट मति वाले मनुष्य की क्रिया भगवान् की आज्ञा में मानते हैं। जैसेः—पहले गुण ठाणे अनेक सुलभ बोधी जीवां सुपात्र दान देइ जीव तपस्या शीलादिक भली उत्तम करणी, शुभ योग, शुभ लेश्या, निरवद्य व्यापार थी।

परीत संसार कियों छै। ते करणी शुद्ध आज्ञ माहिली छै। ते करणी रे लेखे देश थकी मोक्ष मार्ग नो आराधक कह्यो छै।"

[भ्रमविध्वंसनं]

अर्थातः—प्रथम गुणस्थान (मिथ्यात्व गुणस्थान) में अनेक

सुलभ बोधी जीव सुपात्र, दान, दया, तप, जप, अज्ञान क्रिया आदि द्वारा वह मिथ्यात्वी भी मोक्षमार्ग का आराधक बन जाता है। क्योंकि वह सब अज्ञान मयी क्रियाएं भी भगवान् की आज्ञा में ही हैं। पाठक देखेंगे कि तेरापंथियों की स्वार्थतृप्ति से की गई भूल क्या क्या अनर्थ कर रही है। आखिर झूठ को शास्त्रीय रंग दे देना कोई सरल काम नहीं होता। वहां तो शास्त्रों के सही अर्थ का गला घोंट देना पड़ता है, और अनर्थ को प्रधानता देनी पड़ती है।

इसी प्रकार तेरापंथियों ने प्रथम गुणस्थान वाले जीव की अज्ञान क्रिया भी सिद्ध करनी चाही है और उसे सिद्ध करने के लिए पद-पद पर भगवान् की आज्ञा का विरोध करना पड़ा है, लेकिन यह सब कुछ किया भी भगवान् की दुहाई दे देकर ही।

जैसे:—मिथ्यादृष्टि में व्रत नहीं होता, किन्तु तेरापंथी उसे व्रती सिद्ध करते हैं। हालांकि मिथ्यात्वी की जो भी करणी होगी वह सब अज्ञान भरी होंगी। क्योंकि उसने धर्म को तो अधर्म समझना और अधर्म को धर्म समझना है। जिस दिन उसकी यह बुद्धि का फेर मिट जायगा, उसी दिन वह सम्यग् दृष्टि में बन जायगा। जब तक उसको सत्य-दृष्टि नहीं मिलेगी, तब तक उसका चरित्र, तप, सब कुछ अज्ञान मूलक ही होगा। अज्ञान भगवान् की आज्ञा में नहीं। अतः अज्ञान से किया गया तप, जप, आदि भी सब भगवान् आज्ञा से बाहर है।

शास्त्रकार का स्पष्टीकरण

"नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न होंति चरण गुणा।"

(उत्तराध्ययन सूत्र)

अर्थात्:—मिथ्यादृष्टि के पास श्रद्धा नहीं होती, श्रद्धा के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र तथा गुण (पिण्ड विशुद्धि आदि) नहीं होता।

यह उक्त गाथा का अर्थ है। इसमें ज्ञान के बिना चारित्र का न होना स्पष्ट दर्शाया गया है। यद्यपि मिथ्यात्व मूलक जप, तप, आदि का अनुष्ठान पुण्य का तो उत्पादक हो सकता है, किन्तु संबर और सकाम निर्जरा का नहीं। सकाम निर्जरा बिना मोक्ष का आराधक कोई भी नहीं बन सकता। सबर निर्जरा का ज्ञान तब हो सकता है जब कि शुद्ध श्रुत और चारित्र धर्म का पालन किया जाय। मिथ्यात्वी इन से एक दम विपरीत होता है। अतः मिथ्यात्वी की करणी मोक्षाराधन में कुछ भी सहायता नहीं देती अगर कोई शङ्कावादी कहे कि, शुद्ध व्रत तपस्या बिना, चारित्र का पालन किए बिना पुण्य का उपार्जन कोई मनुष्य कर ही नहीं सकता। बिना पुण्य के स्वर्ग नहीं मिल सकता। किन्तु ऐसे बहुतायत से प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिनसे ज्ञात होता है, कि मिथ्यात्वी की करणी भगवान् की आज्ञा में हैं।

उत्तर:—उपरोक्त प्रश्नकर्ता ने जो यह शंका उठाई है, शुद्ध व्रत, तप, जप, आदि किए बिना पुण्य उपार्जन नहीं हो सकता,

यह बात शास्त्र से एकान्त विरुद्ध है। क्योंकि शास्त्र में ऐसे पाठ बहुत आते हैं, जिनसे पता लगता है कि मिथ्यात्वी जप, तप द्वारा स्वर्ग तो प्राप्त कर सकता है, किन्तु मोक्षाराधक नहीं बन सकता। जैसे कि उववाई सूत्र में अकाम व्रत आदि करने वाला स्वर्गाधिकारी तो बताया है, परन्तु साथ में ही उसका जप, तप, आदि मोक्षाराधन में निष्फल है :—

"जीवेणं भन्ते ! असंजए अविरए अपडिहय अपच्चक्खाय पाव कम्मे इओ चुए पेच्चा देवेसिया गोयमा। अत्थे गइया देवेसिया अत्थे गइया णो देवेसिया ॥

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ, अत्थे गइया देवेसिया अत्थे गइया णो देवेसिया ?

गोयमा ! जे इमे जीवा गामागरणयर णिगम रायहाणि खेड़कव्वड़ मडव दोण मुहं पट्टणासम संवाह सण्णिवेसेसु अकाम तण्हए अकाम छुहाए अकाम बंभचेर वासेण अकाम अण्हाण सीय ताब दंसमसग सेय जल्ल मल्ल पङ्क परितावेणं अप्पतरा वा भुज्जतरो वा कालं अप्पाणं परिकिलेसन्ति।

अप्प तरोवा भुज्जतरोवा कालं अप्पाणं परिकिलेसित्ता काल मासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमेन्तरसु देव लोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति। तहिं तेसिं गती तहिं तेसिं ठीति, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते।

तेसिणं भन्ते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पएणत्ता। गोयमा ! दसवास सहस्साइं ठिई पएणत्ता।

अत्थिणं भन्ते ! तेसिं देवाणं इड्ढी वा, जुई वा, जसेतिवा, वलेति वा, वीरिए वा पुरि सक्कार परिकम्मेइ वा, हन्ता ! अत्थि। तेणं भन्ते ! देवा परलोगस्स आराहणा ? णो इणट्ठे समट्ठे। (उववाई सूत्र)

अर्थ :—हे भगवान् जो संयम और विरति से रहित हैं, तथा जिसने भूत काल के पापों का हनन और भविष्यत् के पापों का प्रत्याख्यान नहीं किया है। वह इस लोक से मरकर क्या देवता बन सकते हैं ?

उत्तर :—हां गौतम कुछ बन भी जाते हैं, और कुछ नहीं भी।

प्रश्न :—भगवन् ! इस में क्या कारण है ?

उत्तर :—हे गौतम ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेड़, कव्वड़, मंडव, द्रोणमुख, पट्टणासार, संवाह और सन्निवेशों में रहने वाले जो जीव निर्जरा की इच्छा के बिना अकाम तृष्णा, अकाम क्षुधा, अकाम ब्रह्मचर्य पालन, अकाम अस्नान तथा अकाम से शर्दी, गर्मी, दंश मसक, स्वेद, धूलि, पङ्क और मल का सहन करते हैं, वे थोड़े या बहुत दिनों में क्लेश सहन करके मरण-काल के आने पर मृत्यु लोक को प्राप्त होकर वाणव्यन्तर संज्ञक देवलोक में उत्पन्न होते हैं। वहीं उनकी गति, स्थिति और देव भव की प्राप्ति होती है।

प्रश्न :—वे जीव देवता होकर देवलोक में कितने काल तक रहते हैं ?

उत्तर :—वे जीव देवता होकर दश हजार वर्ष तक देवलोक में रहते हैं।

प्रश्न :—उन देवताओं की वहां पारिवारिक सम्पति, शरीर तथा भूषणों की दीप्ति, यश बल वीर्य, पुरुषाभिमान और पराक्रम होता है ?

उत्तर :—हां गौतम होते हैं।

प्रश्न :—वे देवता परलोक यानी मोक्षमार्ग के आराधक हैं ?

उत्तर :—हे गौतम वे परलोक (मोक्षमार्ग) के आराधक नहीं होते।

(यह उववाई सूत्र के मूल पाठ का अर्थ है)

इस मूल पाठ में अकामक्षुधा, तृष्णा, अकाम ब्रह्मचर्य पालन अकाम शर्दी गर्मी आदि का कष्ट सहन करके दश हजार वर्ष की आयु के देवता होते हैं, किन्तु इन देवता होने वालों को भगवान् ने मोक्ष मार्ग का किञ्चिन्मात्र भी आराधक न होना बतलाया है।

उवावई सूत्र में आगे इस से भी विस्तार सहित वर्णन किया गया है। जो मनुष्य गङ्गा के तट पर बैठ कर केवल पानी पीकर अज्ञान तप आदि करते हैं, वह भी साठ हजार, अस्सी हजार आयुष्य वाले देवता होते हैं, किन्तु वे मोक्षमार्ग के किञ्चित् भी आराधक नहीं।

इससे भी अधिक कठिन तप करने वाले एक एक मास का जो पूरा तप करते हैं और पारणे वाले दिन कुशाग्र मात्र आहार (कुशा के अग्र भाग पर जितना आहार टिक सके) जो ग्रहण करते हैं, वे भी मोक्ष मार्ग के आराधक नहीं हैं। क्योंकि, उनका तप अज्ञानमय होता है। अतः उनका जप, तप, मोक्षाराधन में कुछ भी सहायता नहीं करता। शास्त्रकार तो उस के तप को चन्द्रमा की सोलहवीं कला जितना भी मोक्षाराधन में सहायक नहीं, ऐसा निर्देश करते हैं:—

"मास मासेउ जो वालो, कुसग्गेणं तु भुंजइ।
न सो सुक्खाय धम्ममस्स, कलं अग्घइ सोलसिं॥"

(उत्तराध्ययन सूत्र)

अर्थः—जो मनुष्य बाल, यानी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है वह हर एक मास में कुश के अग्रभाग में जितना अन्न ठहरता है, उतना ही अन्न खाकर रह जावे तो भी वह पुरुष जिनोक्त धर्म के आचरण करने वाले मोक्षमार्ग के आराधक की सोलहवीं कला तक भी बराबरी नहीं कर सकता।

भगवान् के इस प्रकार कह देने पर भी तेरापंथी अपनी चतुराई प्रकट करने से नहीं चूकते। वे कहते हैं:—

"तो तिण रे लेखे पिण सम्यग् दृष्टि रा निर्जरा धर्म रे सोलहवें भाग में न आवे तो सत्तरहवें भाग में तो आवे।"

(भ्रमविध्वंसन पृ० १६)

अर्थात्:—अगर सम्यग् दृष्टि के चरित्र की सोलहवीं कला जितनी भी मिथ्यादृष्टि बराबरी नहीं कर सकता, तो निर्जरा धर्म के सत्तरहवीं कला में तो बराबरी कर ही सकेगा।

पाठक जानते हैं, कि चन्द्रमा की कला केवल सोलह ही होती हैं। इससे अधिक होती ही नहीं। इसलिए शास्त्रकार ने यहां पर मिथ्यादृष्टि के तप का सम्यग् दृष्टि के तप के साथ तुलना कर के इन दोनों के तप की सोलहवीं कला जितनी भी बराबरी का निषेध किया है। किन्तु तेरापंथी उसे कहते हैं कि अगर सोलहवीं कला जितनी समानता नहीं कर सकता, तो सत्तरहवीं कला जितनी बराबरी तो अवश्य कर सकेगा। क्या बुद्धिमत्ता की बात है, मिथ्यादृष्टि की करणी भगवान् की आज्ञा में जो ठहरानी हुई। अतः कुछ न कुछ अनर्थ (पाप) तो करना ही पड़ेगा। तेरा-पंथियों को इतना तो समझ लेना चाहिए, कि दर्शन शुद्धि के बिना कोई भी जीव मोक्षमार्ग का आराधक नहीं बन सकता। दर्शन के बिना ज्ञान नहीं, ज्ञान के बिना आचार नही, आचार बिना मोक्ष नहीं।

तत्त्वार्थ सूत्र के प्रवक्ता उमास्वाति आचार्य तत्त्वार्थ सूत्र के आदि में लिखते हैं, कि मोक्ष प्राप्ति के तीन द्वार हैं। प्रथमः—दर्शन, द्वितीयः—ज्ञान, तृतीयः—चरित्र, परन्तु जब तक हम इन्हें यथा संख्या के तारतम्य में बांध कर मन, वचन, और काया पर इन का एक साथ प्रभाव नहीं डाल देते, तब तक हम निरन्तर मोक्ष से दूर ही दूर होते चले जाते हैं। मोक्ष के समीप हम तभी

आ सकते हैं, जब कि इस सिद्धान्त त्रय पर अमल करना एक साथ प्रारम्भ करदें और क्षण क्षण में उच्च विकास की असंख्य सीढ़ियों को अतिक्रमण करते चले जाएं, तभी हमें मोक्षप्राप्ति की कुछ आशा हो सकती है। परंतु मिथ्यादृष्टि के पास तो मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या विचार, और मिथ्या आचार अठ खेलियां किया करते हैं, जिन में मिथ्यादृष्टि एकतार से मग्न हुआ आसक्त सा झूमा करता है। ऐसे मिथ्यात्वी की मिथ्यात्व भरी करणी भगवान् की आज्ञा के कैसे मानी जा सकती हैं। तीन प्रकार की आराधना वहां पास तक नहीं फटकती।

अर्थात्:--ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र आराधना। मिथ्यादृष्टि के पास नहीं होती। आराधना के बिना आराध्य (मोक्ष) का आराधक कैसे ठहराया जा सकता है। उस की क्रिया अक्रिया का, विनय अविनय का, तथा ज्ञान अज्ञान का रूप धारण कर लेती है, तो बताओ मिथ्यात्वी किस प्रकार मोक्ष का आराधक बन सकता है?

प्रमाणः--किरया अकिरया, विणए अविणए णाण अण्णाणे।

(ठाणाङ्ग सूत्र ठाणा ३)

इसका अर्थ है, यह कि मिथ्यात्वी की क्रिया अक्रिया होती है, विनय अविनय होती है, तथा ज्ञान अज्ञान होता है।

उपरोक्त ये सब बातें मिथ्यादृष्टि की मोक्ष मार्ग के लिए एक दम विपरीत होती हैं। क्योंकि, उसकी आत्मा अभी मिथ्यात्व

के गहरे सागर में डूबी होती है, और वह प्रत्येक सत्य कार्य को असत्य समझा करता है। ऐसे मिथ्यात्वी की अज्ञान मयी क्रिया भगवान् की आज्ञा में मान लेना अपने गहरे मिथ्यात्व का परिचय देना है। इसलिए यह तेरापंथियों का सिद्धान्त मिथ्यात्व भरा दीखता है। वैसे तो तेरा (भीभन) पंथियों के जितने भी कल्पित सिद्धान्त हैं वे विरोधी हैं।

जैसेः—धर्म के दो भेद संबर और निर्जरा।

साधु के सिवा कुपात्र,
कुपात्र को दान देना महा पाप,
माता को वेश्या बताना,
श्रावकों को कसाई कहना,
माता पिता की सेवा में पाप ठहराना,

प्राणी की प्राण रक्षा करने में एकान्त पाप मानना, और मिथ्यात्वी की क्रिया को भगवान् की आज्ञा में बतलाना, इत्यादि, सब सिद्धान्त जैन धर्म से एकान्त विरुद्ध हैं। पाठक, जिन्हें अच्छी प्रकार पीछे पढ़ आए हैं, और अच्छी प्रकार समझ भी गए होंगे कि, तेरापंथ का जैन धर्म के साथ धार्मिक और सैद्धान्तिक, कितना गहरा मतभेद है।

—:*:—

क्या ये साधु हैं ?

।कवा साधुता के लिए विडम्बना ?

हम अभी तक तेरापथियों के सिद्धान्तों को शास्त्रों के मूल पाठों से परखते आए हैं। बेशक उनमें से एक भी सिद्धान्त शास्त्रानुसार नहीं देखा और नहीं उनमें से शास्त्र की कसौटी पर कोई पूरा उतरा है, किन्तु अब हम उनके सांस्कृतिक सम्बन्ध को देखना चाहते हैं। क्या तेरापंथी जैन-धर्म की श्रमण संस्कृति का सही पालन करते हैं ? अथवा श्रमण संस्कृति का वेष लेकर उसे बदनाम ही कर रहे हैं।

हम शास्त्र प्रतिपादित श्रमण संस्कृति से तेरा (ःीखण) पंथ श्रमण सस्कृति की तुलना करेंगे। अगर वह शास्त्रानुसार है, तो हम उसकी सराहना करेंगे। अगर वह एक दम विरुद्ध है तो हम उसको ठीक करने के लिए भी कोई कोर कसर न उठा रक्खेंगे। इसलिए सबसे पहले हमारा विषय होगा कि :—

क्या ये साधु हैं ?

अब पाठक जरा इस तरफ विचार करेंगे, कि क्या जो मनुष्य

साधु का वेष लेकर गृहस्थ परिवार से संकुल घर में रहे, स्त्री-पशु पंडक (नपुंसक) तथा पुरुष और नौकर, नौकरानी जहाँ आपस में लड़ते हों झगड़ते हों, कुतूहल करते हों, युवक और युवतिओं का हास्य रोदन, शृङ्गार, स्नान और उबटन मले जाते हों।

सांसारिक जीवन में भी जहां दाम्पत्य जीवन का इतिहास खुलता हो। द्रव्य को पानी की तरह बहाकर जहां पर उपभोग सामग्री सञ्चित की गई हो। मोहोत्पादक जहां रङ्ग विरङ्गे चित्र लटक रहे हों। मक्खन घी के जहां पीपे (टीन) भर कर जमा किये हों, पानी के जहां सचित्त अचित्त घट भरे जाते हों। आस पास नीचे ऊपर छत पर स्त्री पुरुष शयन करते हों। मात्रा (मूत्र) परटने की जगह और विष्टा (टट्टी) परटने की जगह जहां बिल्कुल भी न हो। क्या ऐसे अनुचित स्थान पर साधु और साध्वी एक दिन भी ठहर सकता है ? शास्त्र तो ऐसे स्थान को साधु और साध्वी के ठहरने के लिए अयोग्य मानता है।

भगवान् तो ऐसे अनुचित स्थान पर ठहरने वाले साधु को अथवा साध्वी को आज्ञा विराधक मानते हैं :—

अनट्ठं पगडं लयणं, भइज्ज सयणासणं।
उच्चार भूमि सम्पन्नं, इत्थिपसु विवज्जियं ॥

(दशवैकालिक सूत्र अ० ८ गा० ५२)

अर्थात् :—जो मकान गृहस्थों ने अपने लिए बनवाया हो, और जिसमें मल विसर्जन, तथा मूत्र परठने की जगह हो, और

शयन, आसन, पाट, पाटलादिक, गृहस्थों ने अपने लिए बनवाया हो और जो स्त्री पशु से पृथक् हो ऐसे मकान में साधु और साध्वी ठहर सकते हैं।

इस पाठ में साधु और साध्वी को स्त्री पशु सहित और मूत्र आदि शंकाएँ परठने की जगह से रहित मकान में रहने का, और ठहरने का निषेध किया है।

अब आगे वृहत्कल्प सूत्र में देखिए कि साधु और साध्वी के लिए कौन से उपाश्रय (मकान) में ठहरनेका निषेध किया है:—

"उवसयस्स अन्तो वगड़ाए सीओदग वियड़ कुंभे वा उसिणोदग वियड़ कुम्भे वा उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निगंथीणं वा अहालंदमवि वत्थए हुरत्थाए उवस्सयं पडिलेह माणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ परं एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एग-रायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा। से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

उवस्सयस्य अन्तो वगडाए सव्वराइए जो इज्झिया-एज्जा। नो से कप्पइ निग्गंथाण वा निगंथीण वा अहां-लंद मवि वत्थए हुरत्थाए उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो

से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए, जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा से सन्तरा छेए वा परिहारेवा ।

उवस्सयस्स अन्तो बगड़ाए सव्वराए पईवे दिप्पेज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीणं वा अहालंदमवि वत्थए, हुरत्थाय उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए जे तत्थ एगरायाओ दुरायाओ वा परं वसेज्जा से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥७॥

उवस्सयस्स अन्तो वगडाए पिण्डए वा लोयए वा खीरं वा दहिं वा सप्पि वा नवणीए वा तेल्ले वा फाणियं वा पूव वा सक्कूली वा सिहिरिणि वा ओक्खिरणाणि वा विक्खिरणाणि वा नो कप्पइ निगंथाणं वा निगंथीणं वा अहालंदमवि वत्थए ॥८॥

(वृहत्कल्प सूत्र उ० २)

अर्थ :—जिस स्थानक या उपाश्रय में गृहस्थ ने ठण्डे अचित्त पानी के घड़े भरे रक्खे हों ऐसे स्थानक में साधु साध्वी को रहना कल्पता नहीं है ।

यदि कदाचित् ऐसा अवसर आ जावे अर्थात् ग्राम में रहने के लिए स्थान तलाश करते हुए यदि कोई अन्य स्थानक न मिले,

और वहां अवश्य ठहरना पड़े तो साधु साध्वी को उस स्थान में एक या दो रात्री के अधिक रहना नहीं कल्पता।

अगर इस मर्यादित काल से ज्यादह ठहरे तो एक या दो रात्री उपरान्त जितना काल वहां ठहरे उतने काल का ही दीक्षा छेद आवे अथवा परिहारिक तप का प्रायश्चित्त आवे।

जिस स्थानक या उपाश्रय में सारी रात दीपक जलता है।

जिस स्थानक या उपाश्रय में सारी रात अग्नि जलती हो। ऐसे स्थान में साधु या साध्वी को क्षण भर भी रहना नहीं कल्पता।

कदाचित् सारे ग्राम नगर में ठहरने का स्थान ढूंढने पर भी न मिले तो गाढ़ा गाढ़ी कारण से अगर वहां रहना ही पड़े तो एक या दो रात्री साधु और साध्वी वहां ठहर सकता है। अगर साधु या साध्वी एक या दो रात्री से अधिक ठहरे तो उसे उतने काल का ही दीक्षा छेद आवेगा। या परिहारिक तप का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ॥७॥

जिस स्थानक में मिठाई का पिण्ड (समूह) अथवा मीठे का पिण्ड रक्खा हुआ हो, शक्कर, आदि रखी हुई हो, क्षीर, दूध, दही, नवनीत (मक्खन) तेल, गुड़, मालपूड़े, तिलादि की पापड़ी लड्डू आदि पक्वान्न रखे हुए हो, या इन वस्तुओं के मटके भरकर रखे हुए हो, ऐसे स्थान में साधु और साध्वी को क्षण भर भी रहना नहीं कल्पता।

इस पाठ में पाठकों को इस बात का तो खूब परिचय मिल गया होगा कि साधु जिस मकान में रहता है वहां कौन सी वस्तुएं त्याज्य हैं, और जो साधु अथवा साध्वी ऐसे मकान में रहता है उसे शास्त्रकार क्या कहते है। उसके लिए किस दण्ड का का विधान है।

अब हम वह पाठ दिखलाते हैं कि जिसमें चित्र आदि लगे हुए हों, ऐसे मकान में भी साधु और साध्वी को ठहरना नहीं कल्पता जैसे :—

नो कप्पइ निगंथाणं वा निगंथणिं वा सचित्त कम्मे उवस्सए वत्थए ॥

नो कप्पइ निगंथाणं वा निगंथीणं वा सागरिए उवस्सए वत्थए ॥

(वृहत्कल्प सूत्र उ० १)

जिस मकान में नाना प्रकार के चित्र लगे हुए हों ऐसे सचित्र मकान में साधु और साध्वी को रहना नहीं कल्पता।

जिस मकान में गृहस्थ रहते हों उस मकान में साधु और साध्वी को रहना नहीं कल्पता।

पाठकों से अब मैं पूछना चाहता हूं कि अगर कोई साधु सती शास्त्र निषिद्ध मकान में भी ठहर कर महत्ता की डींग मारे तो क्या वह वास्तव में साधु या सती कहलाने का अधिकारी है ?

इस प्रश्न के उपस्थित होने पर पाठक यही उत्तर देंगे कि वह साधु या सती कहलाने का अधिकार बिलकुल नहीं रखता। ठीक! यह बात भी सत्य पूर्ण है। परन्तु अब इन साधुता के ठेकेदारों की तरफ देखिए :—पक्षपात को छोड़ कर निर्णय दीजिए कि शास्त्र विधान के अनुसार तेरापंथी कितना चलते हैं, और अपने आप को कितना कहते हैं।

जगरात्रों नगर में इनकी सुन्दरा नाम की सती जिसे तेरापंथी महासती सुन्दरा जी महाराज कह कर पुकारते हैं। वही (सती) ठाणे पांच से एक ऐसे गृहस्थ के मकान में ठहरी हुई थी जहां पर :—नीचे रसोई, पशुओं का तबेला, दो या तीन नल के, गुशलखाना आदि बने हुए हैं। उस मकान में लगभग चार-पांच कमरे हैं। उनके मध्यस्थ वाला कमरा दूसरी मंजल का जो बड़ा कमरा है। उसमें सती जी साहिबा अपना आसन जमाए हुए हैं। उनके आस पास वाले कमरों में उस गृहस्थ के लड़के और लड़कियां तथा स्त्रियां निवास करती है। उधर उनका दाम्पत्य जीवन बाल बच्चों का कोलाहल स्त्री पुरुषों का जमघट भी दिन रात खूब लगा रहता है।

सती जी के रहने वाले कमरे पर भी स्त्री तथा पुरुष सोते हैं। उधर जाने के लिए एक ही रास्ता है। वहां सारी रात दीपक भी जलता है। घी मक्खन आदि भी जमा किया हुआ होता है। विस्तार की बात क्या कि उस मकान में शास्त्र निषिध

जितनी भी बातें हैं वे सब उसमें विद्यमान है। यहां सती जी साहिबा अपना चतुर्मास बिता रही है। लगभग उस गृहस्थ के चालीस पचास जीव, नौकर, नौकरानिओं की भगदड़ तथा तरखाणों की खट खट वहां सर्वदा होती ही रहती है। एक तरफ तो पशु और मानव सृष्टि का सृजन पूरी तीव्रता से चल रहा है, दूसरी तरफ महासती जी वासनाओं के प्रवाह में सतीत्व को प्रवाहित करने की भरसक चेष्टा कर रही है। कहां तक बताया जाय, बताते भी शर्म प्रतीत होती है, किन्तु वे सतियां भगवान् की दुहाई देकर वासनामय गृहस्थ परिवार की तूती को सुनने में मग्न हुई सुख से निवास कर रही हैं। कोई विचार नहीं करता। कोई भी ऐसे शास्त्र को सुनने के लिए तैयार नहीं! यद्यपि भगवान् के सच्चे श्रावक इस बात को देखकर दुःखित अवश्य होते हैं परन्तु उनके पक्षपाती लोग अपनी आंख पर इतना कड़ा पक्षपात का पट्टा बान्धे हैं कि उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। वे अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए धर्म, कर्म, सब छोड़े फिरते हैं। यह बात तो उनके ध्यान तक में नहीं आती, कि साधुता कहां, और कहां गृहस्थ का कोलाहल। कहां सतीत्व और कहां शृङ्गार सभा। अगर इन्हें इसी प्रकार गृहस्थिओं के घरों में वास करना था तो घर बार छोड़ने की आवश्यकता ही क्या थी। परन्तु इस बात को सतियां तो क्या सोचेंगी? उनके आचार्य आदि भी नहीं सोचते कि इस का परिणाम क्या निकलेगा। और वे सतियां फरमाती हैं कि हमारे तेरापंथी साधु और सतियां सबके सब इसी प्रकार उतरते

हैं। ऐसे मकानों में बड़े आनन्द से ठहरते हैं। तब यह उनके लिए क्या आश्चर्य कारिणी बात हो सकती है। वे तो रात को भी पुरुषों की सभा में बैठती हैं। सतियों के पास रात्री को पुरुष भी जा सकते हैं और स्त्रियां भी। साधु के पास रात्री को स्त्री और पुरुष भी खूब आनन्द से बैठ सकते हैं, तो मकान की तो बात ही क्या है।

किन्तु कहना तो तब पड़ता है, जब कि श्रमणोपासक वर्ग यह जानता हुआ भी कि ये साधु सतियां भगवान् की आज्ञा के एक दम विरुद्ध चलते हैं। विरुद्ध होकर मकानों में ठहरते हैं। लेकिन फिर भी इनको साधु और महासती आदि कहकर पुकारते हैं। अतः कहने की आवश्यकता तभी पड़ती हैं जब कि तेरापंथी अपने आप को तो जैन प्रकट करें और आचरण भगवान् के विरुद्ध पालें। ये दोनों विरुद्ध बातें देख कर भय लगता है कि कभी इन बातों से जैन संस्कृति की अपकीर्ति न हो जाय। क्योंकि भगवान् तो ऐसे मकानों में जहां उच्चार भूमी न हो, पात्रों का धोवन परठने के लिए जहां कोई स्थान न हो वहां साधु और सती को एक दिन भी ठहरना नहीं कल्पता। किन्तु ये साधु और सतियां ऐसे मकान में ठहरती हैं। जैसे कि जगराओं में ये सतियां जिस मकान में ठहरी हुई हैं उस में इन तीनों बातों के लिए कोई स्थान नहीं है।

जंगल अथवा पेशाब के लिए इन्हें प्रतिदिन सरकार की चोरी करनी पड़ती है। क्योंकि मात्रा आदि को परठने के लिए मकान

में तो कोई स्थान है ही नहीं, अतः इन को ये वस्तुएं प्रतिदिन राजमार्ग (सड़क) पर गेरनी पड़ती हैं। यह बात जगरात्रों के चार भाइयों के सामने हुई है। एक श्रावक ने पूछा कि महासती जी ? आप मात्रा आदि कहां परठती हैं ? सतियों ने उत्तर दिया था कि हम मात्रा आदि सड़क पर परठती हैं।

यह तो पाठकों को पता ही होगा कि सड़क पर मात्रा और जंगल परठना कानूनन अनुचित होता है। अगर सड़क पर ऐसी वस्तुएं कोई मयुष्य गिराए तो शायद उसे तीन मास की सज़ा भी दी जाती है।

अब आप ही बताएं कि सती बन कर भी सरकार की चोरी करना कितना बड़ा पाप है। ऐसी चोरी तो श्रावक के लिए भी निषिद्ध है, तो साधु या सतियों की तो बात ही क्या है।

दूसरी बातः—ये सतिएं जिस मकान में अब चतुर्मास कर रही हैं उस मकान के नौ या दश बजे तो अवश्य ही दरबाजे बन्द हो जाते हैं और प्रातःकाल चार या पांच बजे खुलते हैं। तो रात के इन छः सात घंटों में अगर मात्रा और जंगल की वाधा हो जाती है, तो वे सतियां क्या करती हैं। क्योंकि एक तो वहां साधु या सती के उच्चार के लिए कोई स्थान नहीं है, और दूसरी बात यह कि तेरापथी साधु मकान पर जाना बुरा समझते हैं।

अगर उस मैटरियल (मात्रा आदि) को जमा करके रख लेती हैं तो समूर्छिम जीवों के अर्जन का पाप करती हैं। उच्चार

कर के बोसरे बोसरे नहीं करतीं तो अपने सतीत्व को समाप्त कर देती हैं।

इनमें से एक बात तो अवश्य करनी पड़ती होगी कि या तो महा पाप का अर्जन करना, या सतीत्व धर्म से पतित होना। अगर उसे रात को ही उपरली मंज़िल से गिरा दिया जाय, तो शास्त्र विरुद्ध होने से दण्डित होना पड़ेगा; अगर रक्खा जाय तो सती धर्म नष्ट हो जायगा।

अब बताएं कि ये सतियां कौनसा मार्ग अङ्गीकार करती होंगीं। परन्तु यह करना तो तब हो जब कि उन्हें कुछ शास्त्रधर्म की लाज हो। भगवान् की आज्ञा का पालन करना हो, तभी इन बातों की तर्फ ध्यान दिया जाय, जब कि ढंग ही बनाए रखना हो तो वहां फिर शास्त्र को कौन पूछता है?

वहां आडम्बर का बोलबाला होता है। साधुता की दुहाई के ढोल पीटे जाते हैं, परन्तु साधुता का पालन नहीं किया जाता। पाखण्डप्रधान समाज में धर्म दूर हो जाया करता है। इन सतियों को नगर में और भी जगह मिलती थी, किन्तु उन सब जगहों को छोड़कर इसी गृहस्थ घर में रहना इन्हें पसन्द था। वेष ले लेना सरल है, किन्तु साधु का वेष लेकर साधुत्व की भावना को शक्तिशाली बनाना अत्यन्त कठिन होता है। ये पीछे लगी हुईं गृहस्थ पने की लालसाएं कठिनता से छूटा करती हैं। ऐसे गर्हित मनुष्य को कोई पक्षपात में साधु या सती कहता है, तो यह उसकी बुद्धि

का फेर है। भगवान् महावीर तो ऐसे मनुष्य को साधु या सती कहलाने का एक दम अनधिकारी मानते हैं।

"तंजहा विवत्ताइ सयणा सणाइं सेवेज्जा से निग्गंथे।"

नो इत्थी पसु पंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति से निग्गंथे, तं कहमिति च॥

(बृहत्कल्प सूत्र)

अर्थः—जिस मकान में स्त्री, पशु, पंडग तथा गृहस्थियों का शयनासन होता हो, ऐसे मकान में नहीं रहने वाला साधु या सती होकर भी उपरोक्त वस्तुओं से युक्त मकान में निवास करता है, तो वह साधु या सती कहलाने का अधिकार नहीं रखते।

इस निर्णय के होने पर अगर फिर भी श्रावक आंखें बन्द कर इन्हें सती सती या साधु साधु कहने का साहस करेंगे तो समझना चाहिए कि वह अनर्थ, पाप और भगवान् की आज्ञा भङ्ग का पातक अपनी आत्मा पर चढ़ा रहे हैं।

——:※:——

सबसे बड़ा धोका

धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी कपट करना, धोखा देना एक निन्दनीय कार्य है। यह तो गृहस्थी के लिए भी हानिकर माना गया है। बेशक वह व्यापार सम्बन्धी हो अथवा व्यावहारिक सब के लिये सब प्रकार से हानिकर है। जो कोई भी इसे जहां कहीं भी (व्यवहार में लाएगा) वहां ही वह हर तरह से हानि ही उठाएगा।

फिर साधु के लिए तो सर्वथा ही कपट करना धोका देना, फरेब रचना त्याज्य है। ऐसा कहना अपनी साधुता को डुबा देना है।

पाठक तो शायद यहां तक कह देंगे कि कपट करने वाला साधु नहीं पाखण्डी है। महापापी है। संसार भी वह कहेगा कि कपट करने वाले को साधु कह देना साधुता का अपमान करना है"।

ठीक अगर किसी पंथ का अग्रणी ही कपट करता हो, अपने गुरु से ही विश्वासघात करता हो जिन्होंने उसे अथक परिश्रम से

शास्त्राभ्यास कराया हो उन्हें ही बदनाम करना अपना धर्म मान लिया हो, क्या ऐसे कृतघ्न मनुष्य को कोई साधु मानने को तैयार होगा ?

पाठक हो बतायें कि क्या ऐसे धोकेबाज़ मनुष्य का कोई बुद्धिमान् मनुष्य नेतृत्व स्वीकार करेंगे ?

बल्कि कई एक तो प्रश्न सुनकर उस समय यह भी कह देंगे, कि हम तो ऐसे नीच प्राणी को मनुष्य ही मानने को तैयार नहीं, नेतृत्व तो एक दूसरी चीज है।

संसार में ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो गुरुदेव से भी धोका करने से पीछे न हटें। जिन से शिक्षा ग्रहण करना उन से ही धोका करना मनुष्यत्व से गिरी हुई बात है।

अगर पाठक कुछ गहराई से बिचार करेंगे तो उपरोक्त सब बातें घटती चली जायगी तेरापंथियों के अग्रणी में, तेरापंथ के प्रवर्तक में।

मैं नहीं कहता कि ये सब से बड़ा पाप धोका है, किन्तु धोका स्वयं कहता है, कि धोका संसार में सबसे बड़ा पाप है।

इसी प्रकार मुझे कहने की आवश्यकता नहीं कि यह इस मनुष्य ने धोका अथवा कपट किया। वे कपट और धोके की घटनाएं स्वय कहेंगी कि यह इस ने धोका किया।

तेरापंथ का प्रबतेक भीषण परम पूज्य प्रात स्मरणीय, बाईस सम्प्रदाय के आचार्य श्री. रघुनाथ जी महाराज का शिष्य था।

इसने गुरुदेव की आज्ञा में रहते हुए भी अपने गुरुदेव से तीन बार कपट किया और पुनः उसका प्रायश्चित लिया, इस बात को तो तेरापथी भी स्वीकार करते हैं।

अब आप बताएं कि जिन्हें गुरु बनाना और उन्हीं के कपटपने से शिष्य बहकाने, गुरु से श्रद्धा, श्रद्धा का नियम ले लेना और उनके भोले भाले श्रावकों को और साधुओं को अशुद्ध श्रद्धा वाली फूंक मारते रहना जिसके परिणाम स्वरूप बाईस सम्प्रदाय के तेरह साधु और कुछ श्रावक झांसे में ले लिए। क्या यह भीषण का गोदी में बैठ कर केश नोंचने जैसा कार्य नहीं था? क्या यह गुरुदेव के साथ विश्वासघात नहीं था?

दूसरा धोका :—

जिन के सैनिक बनकर घूमना, जिन के हुक्म पर चलने का दावा करना और उन्हीं को दोषी ठहराना। भगवान् महावीर श्रमण निर्ग्रन्थ फरमाते हैं कि हमने छद्मस्थ अवस्था में स्वल्प भी पाप व दोष का सेवन नहीं किया, किन्तु भीषण जी कहते हैं कि भगवान् चूके, उन्होंने दोष सेवन किया। भगवान् महावीर फरमा रहे हैं कि हमने गोशाला को अनुकम्पा बुद्धि से बचाया है। किन्तु भीषण जी कहते हैं कि भगवान् ने गोशाला को राग से बचाया। मोह कर के उस की तेजो लेश्या को शीतल लेश्या से शान्त किया था, अनुकम्पा से नहीं।

भगवान् उस समय शुद्ध चार ज्ञान के धारक थे। जिस

समय इन्होंने गौतम गणधर जी को यह कथा सुनाई है, कि हम ने गोशाला को अनुकम्पा से बचाया था। उस समय भगवान् पूर्ण केवल ज्ञानी थे। और केवल दर्शन के धारक थे। किन्तु उन के बचन उत्थापने वाला उनको "पाप से बचाया" कहने वाला भीषण पांच ज्ञानों में से कौन से निर्मल ज्ञान का धारक था? जिसके द्वारा इसने भगवान् को रागी ठहराया। पापी बताया।

आज तक भगवान् के पश्चात् इतने आचार्य हुए, इतने श्रुतधर हुए लेकिन यह किसी ने नहीं बताया कि भगवान् ने गोशाला को मोह से बचाया था। भगवान् ने स्वयं इसे अनुकम्पा से बचाया यह बात भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में कही है, फिर भी भगवान् को "मोह से बचाया" कहना कितना अनर्थ करना है। यह दुनियां की आंखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है?

फिर ऐसे कपटी का जो भी शिष्य समुदाय होगा वह कैसे सरल और निष्कपट बन सकेगा? यहां तो :—"गुरु जिन्हाँ दे टप्पणे, चेले जाण छड़प्प" वाली ही लोकोक्ति चरितार्थ होगी।

देखिए जरा इनकी भी करतूतें, इन्होंने भीषण को भी धोकेबाजी में फीका कर छोड़ा है। शायद संसार की वञ्चकता इन के ही हिस्से में आगई हो, ऐसा प्रतीत होता है।

इन का व्यवहार, — निराकपट भरा,
,, सदाचार, — निरा ढोंग परिपूर्ण,

इन के नियम — प्राय: पापोत्पादक,

इनकी वचन सत्यता — गिरगिट जैसी अस्थायी,

तात्पर्य यह कि मेरे सामने कुछ और ही तरह कहना, और उसी बात को दूसरे के सामने किसी और ही तरह से अलापना। जैसे :—किसी को जीव बचाने में पुण्य बताना, किसी को "यह तो संसार खाता है" कह कर पीछा छुड़ा लेना; किसी को एकान्त पाप कह कर शास्त्रों के घड़े हुए अनर्थ सुनाना, कपट का कार्य है या नहीं ?

इसे कहते हैं :—

"दुनियां लूटना मकर से, रोटी खाना शकर से" वाली नीति। कहना कुछ और करना कुछ और। तेरापंथी साधु प्राय: अपने त्याग की डींग मारते हुए कहा करते हैं कि :—"हम सोडा साबुन से कपड़े नहीं धोते, दूसरे साधु धोते हैं" इसलिए हम सच्चे साधु हैं।

पाठकों को आज इतना तो पता लग गया होगा कि सच्चा साधुपन वस्त्र के न धोने में है। भटभुंजे और हलवाइयों को तो प्रसन्न हो जाना चाहिए कि सच्चा साधुपन का प्रमाण-पत्र तुम्हें शीघ्र मिल जायगा।

खैर ! आगे देखिये :—

एक बात को कह कर उस पर पूरा तो उतरना चाहिए। कम से कम जिस बात को एक बार थूक दिया जाय, उसे फिर चाटना निन्दित कार्य नहीं तो और क्या है ?

तेरापंथ की सतिएं भीखी ग्राम में एक अग्रवाल की दुकान पर से सोडा मांग कर लाई और वस्त्र धोने लगीं। इतने में वही गृहस्थी आ पहुँचा, तथा पूछने लगा, कि महाराज! आप तो सोडा साबुन लेते नहीं, और इस से वस्त्र भी नहीं धोते, अब आप वस्त्र क्यों धो रहे हैं?

उत्तरः—

भाया तुम इस बात का मर्म नहीं समझे, साधु ने शृङ्गार के लिए सोडा साबुन नहीं लेना और वस्त्र भी नहीं धोना। मैल उतारने के लिए कोई हर्ज नहीं होता। विश्वासघात का क्या ही सरल तथा निष्कपट कण्टक रहित मार्ग है।

सत्य तो यह है, जो कोई भी साधु होगा, वह शृङ्गार के लिए कोई काम नहीं करेगा। शृङ्गार के लिए सोडा साबुन बर्तना तो एक दूर की बात है। शृङ्गार के लिए सोडा साबुन बर्तने वाला साधु नहीं वह सांढ है, तथा स्वादु है।

यहां तो एक मात्र वस्त्र नहीं धोने का नियम लेकर भी वस्त्र धोए जाते हैं, यह है जादूगरी तथा प्रवंचना की पराकाष्ठा।

इसी दृष्टिकोण से निष्पक्ष पूर्ण अगर तेरापंथियों सर्वोत्कृष्टता ऐसे ही दावे, डींगें, बड़ाई के पफक्कड़ इकट्ठे किये जांय तो इन का "अभिमान इतिहास" निराला ही बनाना पड़ेगा। तथापि एक चावल से ही चावलों की कचाई तथा पकाई का ज्ञान विचार शील कर लेते हैं ऐसे ही यहां भी उदाहरण रूप में दो चार

नमूने पाठकों के समक्ष रखने उपयुक्त ही हैं।

भीखण की डींग:—

महाविदेह क्षेत्र मझे मुझथकी मोटा अणगार हो।

(भिक्षुजस रसायण पृ० २२८ गा० ७)

अर्थात्:—मेरे जैसा संयमी साधु कोई महाविदेहक्षेत्र में ही हो सकेगा। इस जम्बु द्वीप के भरतक्षेत्र में तो कोई नहीं। देखिए कितनी निरभिमानता है? कितनी बू है, नम्रता, मृदुता (मार्दव) तो कहीं आस-पास भी नही फटकती। पास आए भी तो कैसे "अक़ल के पीछे तो सोटा ले रखा है। पक्षान्धता का भैरव नशा चढ़ा हुआ है। अभिमान से गर्दन अकड़ी हुई है। मानवी प्रकृति को दानवी नटी का वेष पहना दिया है, वहां साधुता और नम्रता का क्या काम हैं।

तेरापंथ का प्रवर्तक भीखण अफीम के नशे में चूर रहता था। जब कभी उसे "पीणक" लगती थी उसी अवस्था में वह शास्त्रों के अनर्थ घटता रहता था। क्योंकि अफीमची को अपना शरूर ही चढ़ा रहता है। उसे धर्म अधर्म का कुछ भी भान नहीं हुआ करता। इस रहस्य का हमें जयाचार्यकृत "भिक्षुजस रसायण" नाम की पुस्तक के पढ़ने से लगा।

जयाचार्य अपनी पुस्तक "भिक्षुजस रसायण" में लिखते हैं-

इग्यारस आहार त्याग दियो मुनि अमलपाणी उपरंतो ॥६॥

शिष्यवर्ग भरता कहे स्वामी ने क्यों न राख्यो अमलरो आगारो ॥७॥

पूज कहै आगार किसौ हिवे, किसी करणी काया नी सारो ॥८॥

अर्थात् :—भीषण जी ने एकादशी के दिन अमल (अफीम और पानी) को छोड़कर आहार छोड़ दिया। दूसरे दिन अफीम और जल का भी त्याग कर दिया। पूज्य श्री जी से उन के शिष्य पूछने लगे कि महाराज! आप ने अमल (अफीम) का आगार क्यों नहीं रखा? तो भीषण जी ने उत्तर दिया कि अब आगार रख कर क्या करना है, अब तो शरीर की ही ममता त्याग दी है। (यह संथारे के समय का वर्णन है)

इन गाथाओं से स्पष्ट प्रकट होता है कि भीषण जी का शरीर अफीम के बिना कुछ करता भी न होगा। वह अफीम के नशे में आसक्त बन गए होंगे। अब यह बात निस्संकोच कही जा सकती है, कि भीषण जी ने ये शास्त्रों के अनर्थ घड़े हैं, और घड़े भी अफीम के नशे में ही हैं। अन्यथा ऐसे अनर्थ एक हठी अथवा नशई (अमली) के बिना कौन कर सकता है। ये दोनों बातें भीषण में पूरी घटती हैं। एक तो स्वभाव सिद्ध ही वह हठी व्यक्ति था। हठ का ही यह सब कुपरिणाम है। दूसरे उस में अफीम की भी बर्बरता खूब भरी हुई थी। इन दो दुर्गुणों के प्रताप से ही इस नाटक का अभिनय प्रस्तुत हुआ था। बेशक

उस अभिनय को रोचक बनाने के लिये नमक मिर्च आदि भी खूब लगाना पड़ा था।

क्योंकि, अगर नीचली तह में रखा हुआ पिटारी का माल सब के सामने वैसे ही दिखा दिया जाता तो इस की उसी समय पोल खुल जाती। संसार की नजरों में वह एक दम गिर जाता। अतः इसे सचको तिलाञ्जलि देनी पड़ी, और कपट का मार्ग अङ्गीकार करना पड़ा, तब वह नाटक का किसी न किसी रूप में अभिनेता बन सका। देखें समाज में कब जाग्रति आएगी।

अब आप इन के आचार्यों की दृढ़ प्रतिज्ञाएं देखिए :—

तेरापंथ सम्प्रदाय में जव कोई भावी साध्वी या साधु का वेश अङ्गीकार करता है, उस समय उन्हें यह नियम लेना पड़ता है, कि मैं अपनी निश्राय का कोई शिष्य अथवा शिष्या नहीं बनाऊंगा। अपनी निश्राय में मैं कोई वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि किसी भी वस्तु पर भी अधिकार नहीं रखूंगा। नियम सर्वथा त्यागपूर्ण है, किन्तु जिस समय तुलसीराम दीक्षित हुआ था, इस ने भी यही पूर्वोक्त नियम लिया होगा। परन्तु आज वह हजारों पुस्तकों, शास्त्रों और पात्रों का अधिपति बन बैठा है। शिष्य और शिष्याएं भी जितनी बनती हैं वे सब आज तेरापथ के आचार्य तुलसीराम के ही बनती हैं। अब आप बतायें कि तुलसीराम का वह नियम आज कहां गया।

क्या आचार्यपद मिलने मात्र से आयुष्य पर्यन्त के नियम भी टूट सकते हैं ?

क्या नियमकर्ता तुलसीराम बदल गया अथवा उसके कृत नियम ही समाप्त हो गये ?

यह प्रतिज्ञा है, या गोबर का कीला ? जो पूर्व की हवा लगने मात्र से पूर्व की ओर झुक जाय और पश्चिम की हवा लगने से पश्चिम की तरफ पसर जाय।

ऐसा नहीं, वे जीवनावधि कृत प्रतिज्ञायें जीवन के साथ ही समाप्त हुआ करती हैं। किन्तु यहां तो प्रत्याख्यान के स्थान में पिचकरण किया जाता है, ज़रा सा आचार्यत्व का प्रलोभन हुआ और निचक गया। यह आत्मा के प्रति धूर्तता नहीं तो और क्या है ?

दूसरी बात :—

कालुगणी के स्वर्गवास होने पर श्री तुलसीराम जी को 'गणी' पद दिया गया। अब जो शिष्य कालुगणी के थे, वे तेरापंथिओं ने तुलसीराम के बना दिये। यह तेरापंथियों ने अच्छा 'करेवा' अपनाया है। जिसका अमल पहले आचार्य के शिष्यों को दूसरे आचार्य के शिष्य बनाने में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। करेवा सिद्धि वे इस प्रकार करते हैं:—

गुरु के मरने पर मनुष्य निगुरा बन जाता है अतः इसे दूसरा कोई नया जीवित गुरु बना लेना चाहिए।

इसीलिए नियम के पक्के बात के सच्चे तेरापंथी साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका एक गुरु के मरने पर दूसरा गुरु बना

लेते हैं। ठीक है घर का झगड़ा घर ही में निबेड़ लिया, किन्तु कितनी अज्ञानता है, क्योंकि तुलसीराम ने अपने गुरु कालुगणी के मरने पर कौन सा नया जीवित गुरु बनाया ?

जब दूसरों के लिए यह गुरु का करेवा सिद्ध है तो आचार्य तुलसीराम ने कौन सा अपराध किया है, जिससे उन्हें रंडवा छोड़ते हो ?

जैसे बना उल्लू सीधा किया, किन्तु यह आत्मवञ्चना नहीं, तो क्या है ?

तीसरी बातः—

जब किसी साधु या सती का स्वर्गवास हो जाता है, तो उस के शव को एक कोणे में बांधकर बिठा दिया जाता है। उस समय आचार्य तुलसीगणी जी उठ कर आते हैं, और उसके कानों में छू मन्त्र सुना देते हैं। जब वे अपती गिटमिट सुना चुकते हैं तो तेरापंथी श्रावक उसे उठा ले जाते हैं।

हमें अभी तक इस बात का निश्चय नहीं हो पाया है कि क्या वह उस की गति की स्वीकृति दी जाती है ? या उसे किसी प्रकार का सन्देश दिया जाता है ? न जाने इस आडम्बर से कब तक दुनियां को लूटते रहेंगे ?

यह सब इन की हाथों की सफाई है। आडम्बर का प्रभाव कभी भी स्थायी रूप में नहीं पड़ सकता, उसकी जड़ें खोखली होती हैं।

उसने आज या कल सब के सामने चित्त गिरना है। उस के धोखे में आए हुए अथवा फंसे हुए जितने भी अग्रणी हैं, वे ही उस की पोल खुल जाने पर संसार के सामने ढिंढोरा पीटते फिरेंगे और साथ में यह चेतावनी भी देंगे :—

जो मनुष्य अपने गुरु से कपट करता है, उसे धोका कहा जाता है। जो स्वयं गुरु बन कर फिर कपट करता है, उसे बड़ा धोका कहा जाता है। जो भगवान् से भी कपट करता है उसे "सब से बड़ा धोका" नाम दिया जाता है।

"आजकल के वीतराग संयमी"

तेरापंथी साधु अधिकतर अपनी बड़ हांका करते हैं। साधु ने राग, द्वेष, करना नहीं जो करे सो साधु नहीं, हम राग, द्वेष करते नहीं, इसीलिए ही तो बिल्ली से चूहा छुड़ाते नहीं, अगर कोई छुड़ा दे तो एकान्त पाप करे; क्योंकि, बिल्ली तो भूखी होती है, चूहा उसका खाद्य है, अगर उसे वह न खाए तो भूखी मर जाय अतः बिल्ली से चूहा छुड़ाना चूहे पर राग प्रकट करना है, और बिल्ली पर द्वेष।

राग, द्वेष से कर्म बन्ध होता है, कर्मबन्ध साधु ने करना नहीं। इसीलिए हम बिल्ली से चूहा छुड़ाने में एकान्त-पाप बताते हैं।

तेरापंथियों में इस आशय की एक लोकोक्ति भी प्रचलित है:—

"जो बिल्ली से चूहा छुड़ावे, वह मर करके नरक में जावे

किन्तु तेरापंथी यह तो बताएं कि अगर बिल्ली को दूध पिला दिया जाय, और चूहे को छुड़ा दिया जाय तो उसमें बिल्ली के भूखे मरने का तो पाप टल गया। और दूसरी बात जो राग द्वेष की कही है वह तो एक सीधे उत्तर से ही कट जाती है। जैसे :—

अगर हमारा चूहे पर राग हो और बिल्ली पर द्वेष तो, बिल्ली को कुत्ते से न छुड़ाए, और चूहे को किसी क्षुद्र जीव को खाते हुए को न भगाएं। हमारा तो यह कर्त्तव्य है, कि कोई भी जीव अगर किसी अन्य पर अनधिकार चेष्टा करता है, तो हम यथा-शक्ति उसको हर तरह से अनुकम्पा का दान दें और उसके प्राणों की रक्षा करें।

बेशक वह क्षुद्र जीव हो, वृहत् या महान् हमारा धर्म प्रत्येक जीव की रक्षा करना है। उसे राग, द्वेष बताना अज्ञान का परिणाम है।

तेरापथी इस बात को तब सोचें जब कि इन्होंने सत्य का धर्म का और दया का अन्वेषण करना हो। उन्होंने तो अपनी दक्षता अपनी बढ़ाई मारने में लगानी है। उन के लिए आदर्श बनना और सत्याचरण का पालन करना एक बुरी बात है। वह अपने आपको वीतराग संयमी प्रकट किया करते हैं और जहां भी जाते हैं वहां सब से प्रथम अपनी बीतरागता प्रकट किया करते हैं। इसकी मैं आपको एक कथा सुनाता हूं उससे आपको विदित हो जायगा कि तेरापंथी कितने वीरतागता को धारण किये हुए हैं।

पञ्जाब प्रान्त के रोपड़ नगर में भी कुछ वर्ष पहले तेरापंथी गए थे। ये किसी चोबारे में उतर गए, शाम का समय था लोगों ने भी सुना कि साधु महाराज आये हैं, कुछ भक्तजन भी वहां इकट्ठे हो गए। लोगों के दिलों में साधु उपदेश सुनने की लालसा थी। अतः उन्होंने प्रार्थना की, कि महाराज ! हम उपदेश सुनना चाहते

हैं। साधु ने उचित समय देखकर उपदेश देना आरम्भ कर दिया :—

"राग, द्वेष का ही संसार में बन्धन है। वह ही छोड़ने योग्य है। विशेष कर साधुओं के लिए तो राग, द्वेष करना ही नहीं चाहिए। राग द्वेष करने वाला साधु, साधु नहीं। साधु को तो राग, द्वेष से बिल्कुल ही रहित होना चाहिए।"

यह सुन्दर व्याख्या तो सब श्रोताओं ने सुनी और ठीक ठीक (तहत तहत) कह कर सिर भी खूब हिलाया। किन्तु उन में एक मनचला श्रोता था, जो उपदेश को बड़ा महत्व दे रहा था; पूछने लगा। महाराज! क्या आप राग, द्वेष नहीं करते?

तेरापंथियों ने उत्तर दिया, कि "भाया जब हमने एक बार कह दिया कि साधु राग, द्वेष नहीं किया करते, फिर पूछने की क्या आवश्यकता है; हम भी तो साधु ही हैं।"

श्रावक ने सोचा कि राग, द्वेष से विमुक्त साधु तो मिलना ही दुर्लभ है, आजकल तो सराग संयमी साधु होते हैं। ये वीतराग संयमी साधु कहां से उतर पड़े, परीक्षा तो लेनी चाहिये।

वह वहां से उठा, उठकर उन के पात्रों की झोली उठाई, उनके सामने से नीचे को उतरने लगा। व्याख्यान देने वाले साधु को भी इस बात का पता चला, वह भी उसके पीछे भागा, उसके पास जाकर, अपने पात्रों की झोली उसके हाथ से खैंचने लगा, उस श्रावक से तेरापंथी साधु कहने लगा कि भाई यह क्या करता है

ये तो पात्रे हमारे हैं, इन्हें उठाकर कहां ले चला। श्रावक ने उत्तर दिया, कि महाराज ! जिधर मेरी इच्छा है, उधर ले चला।

तेरापंथी :—जिधर तेरी इच्छा है, उधर जा, हम कौनसा रोकते हैं परन्तु ये पात्र तो हमारे हैं, इन्हें तो तू नहीं ले जा सकता, इन्हें यहां ही छोड़ दे ये हमारे हैं।

श्रावक:—महाराज ! आप तो कहते थे कि साधु ने किसी पर मेर (ममत्व) नहीं करनी। मेर करने वाला आप के उपदेशानुसार साधु नहीं। फिर यदि आप पात्रों की भी मेर नहीं छोड़ सकते, तो आप राग, द्वेष छोड़ने की डींग क्या मारेंगे ? लीजिये अपने पात्र मैंने क्या करने हैं। केवल वीतराग संयमिओं की परीक्षा ही करनी थी सो करली।

महाराज ! ऐसे गपौड़े किसी और जगह ही जाकर मारने। आप के जाल में इधर तो कोई फंसने वाला नहीं है।

तेरापथी साधु कुछ खिसियाने से हो गए। प्रातःकाल उठे, बिस्तर गोल किया और अपने रास्ते पड़े।

इसे कहते हैं ढोल की पोल, जहां पर भी फट जाती है, वहां स्वयं बेकार तथा अपनाने वाले को बेशर्म बना देती है। उस बेचारे ढोल यावेष की पोल या ढोंग खुल जाने पर बदनामी के सिवा और कुछ पल्ले नहीं पड़ता।

देखिए भगवान् महावीर श्रमण निर्ग्रन्थ ने दो प्रकार के संयमी कहे हैं :—

१—सराग संयमी और २—वीतराग संयमी

वीतराग संयमी तो कल्पातीत होते हैं जैसे :—तीर्थङ्कर भगवान्, अब रहे सराग संयमी। उनमें जिन कल्पी और स्थविर कल्पी दो प्रकार के संयमी होते हैं।

आजकल इस पञ्चम आरे में जिन कल्पी साधु भी नहीं होते। आज के समय में केवल स्थविर कल्पी ही साधु होते हैं। वे हैं सराग संयमी।

सराग, अर्थात् राग सहित। राग केवल पाप वर्द्धक ही नहीं है, वह भी कई भेद भेदान्तरों में विभक्त होता है। स्वार्थ के वशीभूत होकर जो दूसरे का सम्बन्ध होता है वह राग स्वार्थानुराग नाम से पुकारा जाता है। जो परमार्थ के लिए दूसरे से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है उसे प्रेमानुराग, धर्मानुराग आदि नाम से बुलाया जाता है। भगवान् महावीर श्रमण नायक ने जहां कहीं भी धर्मी का परिचय दिया है, वहां वे ही शब्द प्रयोग में लाए गए हैं, और उन्हीं के द्वारा धर्मीके धर्म-प्रेम की प्रशंसा करी है:—

"अट्ठि मिञ्जपेमाणुराग रत्तो, अट्ठि मिञ्जधम्माणुराग रत्तो"

(उपासक दशाङ्ग सूत्र)

अर्थात्:—धर्मी की हड्डी हड्डी और मिज्जा मिज्जा (मज्जा मज्जा) में प्रेम=परमार्थ का अनुराग स्नेह भरा पड़ा है।

धर्म का अनुराग उसकी नस नस में भरा हुआ है। ऐसे

ऐसे धर्मियों की भी धर्म के पीछे अनुराग शब्द जोड़ कर ही भगवान महावीर ने प्रशंसा की है। धर्मियों के सामने आदर्श रक्खा है, जिसे देख कर प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्मा में धर्म के अनुराग को कूट कूट कर भर सकता है। अपनी आत्मा को आने वाली सन्तति के लिए आदर्श बना सकता है। केवल राग शब्द से ही पाप का ज्ञान नहीं कर लेना चाहिये। दूध अमृत है परन्तु वह भी अयोग्य स्थान पर विष बन जाता है। ऐसे ही राग का गम्भीर विचार करने से पता लग जाता है, कि अगर धर्म राग का परमार्थ के लिए उपयोग किया जाय तो वह भी मुक्ति का दाता बन जाता है।

सन्त कवि तुलसीदास जी अपनी स्त्री पर इतने आसक्त थे, कि उसे क्षण भर भी अपनी आँखों से परे नहीं कर सकते थे। वह स्त्री जब अपने पीहर को चली तो साथ में ही तुलसीदास जी भी चल पड़े। तब स्त्री ने उन्हें फटकार सुनाई :—

पतिदेव! जितना आपका राग मेरे में है, इतना राग यदि आपका परमात्मा में हो, तो आपको कितना ज्ञान का प्रकाश मिले, मेरे पीछे लग कर तो अपनी आत्मा को डुबाना है।

यह सुन तुलसीदास जी की आंखें खुलीं और अपने राग का मुख भगवान् की ओर मोड़ लिया। उसी दिन से उन्हें ख्याति मिलने लग पड़ी।

एवं यदि राग भी धर्म के साथ जोड़ दिया जाय और उसे

धर्मानुराग बनाकर पालन किया जाय तो वह ही मुक्ति दाता बन जाता है।

देखिए उस चौथे आरे में भी धर्मी को प्रेमानुरागी अथवा धर्मानुरागी नाम से ही पुकारा जाता था। आजकल के समय में तो साधु है ही सराग संयमी।

भगवान् का ऐसा फरमान है। इस पञ्चम काल में फिर भी एक या दो नही सवा छः सौ तेरापंथी वीतराग संयमी गूलर की तरह कहां से निकल पड़े, इस बात का पता नहीं लगता ?

अरे ! झूठ की भी कोई हद होती है, किन्तु उससे परे गपौड़े की कोई हद नहीं होती धन्य है गपौड़ पंथिओं को !!!

"सूत्रानुसार चलने की प्रतिज्ञा"

तेरापंथियों की मान्यता है, कि जब तक साधु सूत्रानुसार पूरे नियमों को न पाले तब तक उसे साधु ही न मानना चाहिए। अगर कोई साधु एक भी दोष का सेवन करले तो उसका समूल साधुत्व नष्ट हो जाता है। ठीक है नियम तो बहुत अच्छा है, किन्तु कार्य कह देने से कर देना कठिनतर होता है। मैं पहले यह दिखा आया हूं कि तेरापंथिओं के दावे, और डींगें हांकना, आदि कोई निराला ही व्यक्ति कर सकता है। क्या तेरापंथी अपने अन्तःकरण की साक्षी से यह कह सकते हैं, कि वे "शास्त्र के पूरे नियम छोड़" एक नियम का भी पूरा पालन करते हैं। लेकिन बाह्य रूप से बड़ हांक देना कुछ और बात होती है, अन्तरङ्ग आत्मा तो ऐसा कहते कांपती है। तेरापंथिओं की आन्तरिक मनोवृत्तियां भगवान् के सामने होती थर्रथर्राती हैं, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन भर में शास्त्र के एक नियम का भी पूर्ण पालन नहीं किया है।

अगर कुछ किया है तो केवल अज्ञान तप के सिवा और कुछ नहीं किया है। तेरापंथिओं ने सूत्रानुसार चलने के नियम को

इस प्रकार घटा लिया है कि जो तेरापंथी एक दोष का सेवन करता है वह तो साधु नहीं, किन्तु जो अनेक दोषों का सेवन करता है वह पूर्ण संयमी साधु है। तेरापंथी साधुओं की आन्तरिक मान्यता तो यह है, कि बेशक दोषों का सेवन करो, कितना पाप क्यों न करो, अपने पंथ के प्रचार के लिए कितनी ही भगदड़ मचावो, अनर्थ तोलो परन्तु मरते दम सब की आलोचना करलो, बस तुम्हारे सर्व पाप दूर हो जायंगे। यह नियम इनका ईसाइयों से लिया हुआ दीखता है, क्योंकि वे भी तो कहते हैं :— कितना पाप करो, अत्याचार फैलाओ, आखिर ईसा मसीह की शरण में आ जावो, वह सब तुम्हारे पाप अत्याचार माफ कर देगा।

इसी प्रकार इन्होंने भी नियम सा बना लिया है, कि झूठ बोलो, चोरी करो, धोका खेलो पंथ के प्रचार के लिए, कितना ही कपट करो, दुनिया को जिम तिम करके किसी न किसी भी प्रकार फंसाओ, अपना उल्लू सीधा करो, परन्तु आखिर में आलोचना कर लो, बस सर्व पाप दूर हो जाते हैं।

वाह! वाह! रे स्वार्थियो ठीक है इसमें तुम्हारा क्या दोष है, तुम्हारे आचार्य इसी बुद्धि के मालिक थे। जिन्होंने अपने सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए अनर्थ, पाप आदि दुर्गुणों की भी कोई परवाह नहीं की।

सूत्रानुसार चलने वाले तेरापंथी साधु जरा मुझे यह तो बताएं :—

माघ महोच्छव किस शास्त्रानुसार मनाते हैं ? क्योंकि शास्त्र में तो महोत्सव करने का उसमें भाग लेने का भी निषेध है, और तुम वसन्त पञ्चमी को सब साधु साध्वियों को इकट्ठा कर लेते हो, तथा अपने सब चेले चांटों को बुला लेते हो, उनसे खूब माल मिठाई खाते हो, बड़े बड़े तोंद पेट फुलाकर साधु सती हुए घूमते हो, यह सब किस शास्त्रानुसार ?

माघ महोत्सव का लोगों को नियम कराते हो, कि इस उत्सव में अवश्य आओ, यह किस शास्त्रानुसार ?

साथ में हर समय एक या दो आदमी रखने और उनसे रोटी पकवा कर खाना, कौन से शास्त्रानुसार ?

जिस मकान में रहना, जिसकी आज्ञा लेनी उस ही का आहार पाणी ग्रहण करना, किस शास्त्रानुसार ?

(ये बातें जगराओं में प्रत्यक्ष घटी हैं)

अपने भक्तों को सेवा का नेम करवाना, अगर कोई भक्त-जन कहे, कि महाराज ! मैं आपकी पांच दिन सेवा करूंगा, तो तेरापंथी साधु कहा करते हैं, कि भाया पांच दिन तो अल्प छै, फैलाणा २ सेठ ने सवा मास की सेवा का नियम लिया है, तू भी घणा दिन की सेवा का लाभ ले।

अच्छा महाराज ! पन्द्रह दिनों का नियम करा दो। अच्छा भाई थारी इच्छा इस प्रकार नेम करवा कर उनको लूटना किस शास्त्रानुसार है ?

तेरापंथी भीषण जी मर कर पांचवें देवलोक के इन्द्र हुए हैं, ऐसा मानते हैं। तेरापथी देवताओं को असंयती, अव्रती, और कुपात्र कहते हैं। उस असंयती और कुपात्र का मरणान्त समय में उसका दूसरों को अन्त में शरण दिलाते हो, और उसकी माला फेरने का नियम करवाते हो यह सब किस शास्त्रानुसार ?

पेशाब को शुचि यानी शुद्ध मान कर झोली, लोहना और माण्डलादि, वस्त्र धोते हो फिर लोकों के सामने नटते हो तथा कपट से बोलते हो, किस शास्त्रानुसार ?

बारी बांध कर भोजन लाते हो, किस शास्त्रानुसार ?

अधिक क्या लिखा जाय, यह सत्य है, कि प्रतिज्ञाएं तो सूत्रानुसार हैं, किन्तु आचरण बिलकुल शास्त्र विरुद्ध। इसमें इनका क्या दोष है इनके सर्व सिद्धान्त ही शास्त्र विरुद्ध हैं। ठीक है, जिस पंथ की जड़ ही कपट से सिंची हो, जिसे पग पग पर कपट करने की आदत सी पड़ गई हो, उसे सूत्रानुसार प्रतिज्ञा का क्या भान ?

तेरापंथियों की सम्यक्त्व प्रणाली

तेरापंथियों की सम्यक्त्व प्रणाली भी विचित्र है। जब कभी समकित लेने वाला ग्राहक कोई आ फंसता है, उस आगन्तुक को तेरापंथियों का पूज्य तुलसीराम सब से पहले उसे नियम करवाता है :—धर्म, पुण्य, जानकर पांच महाव्रत धारी (तेरापंथी) साधु के सिवाय किसी को भी नमस्कार नहीं करना, और उसे आहार पानी आदि भी नहीं देना।

जब वह यह नियम कर लेता है, तो पूज्य साहिब उसे दूसरा नियम करवाते हैं :—किसी मोटे वृक्ष को नहीं कटवाना जो दोनों हाथों में न समा सके।

तीसरा :—अगर तुम्हारे से कोई पूछे कि तुम्हारा गुरु कौन है, तो उसको उत्तर देना कि तुलसी गणी।

जब आगन्तुक यह अच्छी प्रकार सुन लेता है, तो उसे कहा जाता है "मेरा गुरु तुलसी गणी" ऐसा तीन बार बोल। वह तीन बार बोलता है बस उसे शुद्ध तेरापंथी तुलसी गणी का शिष्य मान लिया जाता है।

जब हमें इस विचित्र प्रणाली का पता लगा तो हमें उस समय तो कुछ आश्चर्य चकित रहना पड़ा, किन्तु फिर हमने विचार किया कि आश्चर्य की कौनसी बात है, तेरापंथियों के तो सिद्धान्त ही विचित्र हैं ; अगर उनकी समकित प्रणाली विचित्र हुई तो आश्चर्य की बात क्या है।

न उसे अरिहन्तदेव का स्वरूप समझाना, न नमस्कार मंत्र सिखाना, न ही तत्त्वज्ञान कराना, बस गुरु के नाम बताने की धुन सवार है, वहां समकित के स्वरूप को कौन पूछता है।

एजएटों की कोशिशें—

तेरापंथ समाज ने एजएट (दलाल) छोड़े हुए हैं, वे धन से लोभाभिभूत हुए जनता के मानस बिगाड़ने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाए रखते हैं। उन दलालों का तो कर्म, धर्म कुछ होता ही नहीं, बस उन्हें एक तो लीडरी घोटने का खूब मौका मिल जाता है, दूसरी तरफ चांदी भवानी की गुप्त वर्षा होती रहती है। इन्हें क्या काम दया से, अनुकम्पा और दान पुण्य से इन्हें अपनी पेट भराई चाहिए !

जनता में ऐसे प्रचार से संकीर्णता और निर्दयता बढ़ती है। उन्हें ऐसा विचार नहीं होता, वे तो कहते हैं, कि बढ़ने दो, हमें तो ऐसे प्रचार से धन मिलता है तथा चौधरपना मुफ्त का, हमें और क्या चाहिए ?

अरे दलालो ! क्या समझते हो कि धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार करना पाप नहीं ? महा पाप है।

लोभान्ध पुरुष को फिर नरक के यमराज ही ठीक किया करते हैं। अब भी समझ आओ क्यों अपनी गति बिगाड़ रहे हो। यह तो धर्म पर और संसार पर कलङ्क है, जिसे मिटाना दिल दिमाग़ वाले प्रत्येक नवयुवक का आवश्यक कर्तव्य है। क्या ऐसे पाप नियम भी कभी धर्म के नाम से पुकारे जा सकते हैं? यह धर्म नहीं यह धर्म पर काला धब्बा है।

तेरापंथ और जैन शास्त्र

तेरापंथः—छःकाय की रक्षा के लिए उपदेश देना एकान्त पाप करना है [भीषण कृत अनुकम्पा ढाल छठी पृ०]

जैनशास्त्रः—संसार के समस्त प्राणियों की दया और रक्षा के लिए उपदेश देना एकान्त धर्म करना है।

(प्रश्न व्याकरण सूत्र पाठ पृ०)

तेरापंथः—मतमार, कहकर भी प्राणियों के प्राण की रक्षा करने वाला ही सच्चा जैन और साधु है।

(भगवती सूत्र जहां महण शब्द है)

तेरापंथः—"एह अज्ञानी जीवरी कोई मूरख माने बात कहे गाडा हेठे आवे, डावडो तो साधां ने लेणो उठाय। श्रावक ने बैठा करे नहीं, ओ ऊन्धो पन्थ इण न्याय॥"

(भी० अ० ढा० छठी गा० ३६)

अर्थः—ऐसे अज्ञानी जीवों की कोई मूर्ख ही बात मानेगा, कि अगर कोई बच्चा गड्डे के नीचे आ रहा हो तो उसे साधुओं को बचा लेना चाहिए। कितने मूर्ख हैं, जब श्रावक को तो बैठने

के लिये कहना नहीं; बच्चे को नीचे से बचा लेना। यह तो एकान्त पाप है।

जैनशास्त्रः—बच्चा गड्डे के नीचे आता हुआ दुखी हो रहा है, उसके दुख को दूर करने वाला साता वेदनीत कर्म का (एकान्त पुण्य का) उपार्जन करता है। (भगवती सूत्र पाठ)

श्रावक विषयिक युक्ति के विषय में:—अगर तेरापंथी श्रावक को न बैठना कह देने मात्र से बच्चे उठाने का नियम करते हों, तो तेरापंथी साधुओं को जल के पात्र में पड़ी हुई मक्खी को भी नहीं उठाना चाहिये।

तेरापंथः—

साधां ने लब्धि न फोडणी जी, सूत्र भगवती मांय।
पिण मोह कर्मवश राग थी, तिण सूं लियो गोशालो बचाय॥

(भी० अ० ढा० छठी गा० ११)

अर्थः—साधु के लिए लब्धि फोड़ना मना है, ऐसा भगवती सूत्र में फर्माया है। अतः भगवान् ने मोह और राग के वश में होकर गोशाला को बचा लिया।

जैनशास्त्रः—भगवान् ने गोशाले को अनुकम्पा से बचाया, मोह और राग से नहीं। (देखो पाठ पृ० १२ भगवती सूत्र)

विशेषः—जिसमें साधु के लिए लब्धि फोड़ना निषिद्ध हो, ऐसा पाठ भगवती में कहीं नहीं आया।

जैनशास्त्र :—शास्त्र में ऐसा कहीं पाठ नहीं आता, जहां साधु के सिवा अन्य सब को कुपात्र कहा गया हो, क्योंकि तीर्थ नाम ही पात्र का है। उस के होने वाले साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका का संघ ही............सब पात्र हैं। शास्त्र में प्रतिमाधारी श्रावक को श्रमणभूत श्रावक कहा गया है। श्रावक की गोचरी का भी भगवान् ने स्वयं विधान किया है।

[देखो पीछे पृष्ठ दशाश्रुतस्कंध सूत्र]

तेरापंथी :—

गृहस्थ रे घर लागी लायो, घर वारे निकलियो न जायो।
बलता जीव विल विल बोले, साधु जाय किबाड़ न खोले॥

(भी० अ० ढाल २)

अर्थात् :—गृहस्थ के घर में आग लग गई हो, और घर के लोग बाहर न निकल सकते हों, बल्कि अन्दर ही बिलबिलाहट कर रहे हों, यदि ऐसे समय में साधु उधर जा निकले तो वह उन घर वालों की रक्षा के लिए किबाड़ न खोले। क्योंकि जो खोले वह एकान्त पाप करे।

जैनशास्त्र :—अगर साधु को ऐसा भयंकर समय आ पड़े, और साधु के किबाड़ खोलने मात्र से ही उन घर वालों की रक्षा होती हो तो साधु को उसी समय किबाड़ खोल कर उन की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। इस में किञ्चिन्मात्र भी पापांश नही है,

बल्कि उन जीवों का दुःख दूर करने से साधु एकान्त पुण्य (साता वेदनीय कर्म) का उपार्जन करता है।

(भगवती सूत्र पाठ देखो पीछे पृ०)

इस में भी पाप बताने वाला महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है। (दशाश्रुत स्कंध सूत्र)

तेरापंथी

कोई पाखंडी इम कहे रे, लाय बुझावे लोयो।
अल्प पाप बहु निर्जरा रे, दम्भकरी थापे दो यो॥

(भिक्षुजश रसायण पृ० ६७)

अर्थात्:—कितने ही पाखंडी लोग ऐसा अपभाषण करते हैं, कि आग बुझाने में अल्प पाप और बहुत निर्जरा होती है, लेकिन ये दोनों बातें असत्य हैं; आग बुझाने में एकान्त पाप ही होता है, निर्जरा नहीं।

जैनशास्त्रः—हे ! कालोदाई !

"तत्थणं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, सेणं पुरिसे महाकम्मतरा ए चेव जाव महा वेयणतरा ए चेव, तत्थणं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतरा ए चेव जाव अप्पवेयणा तराए चेव।"

(भगवती सूत्र उ० १० श० ७)

अर्थः—हे कालोदाइन् ! जो मनुष्य अग्नि को प्रज्वलित करता है, अर्थात् आग लगाता है, वह महापाप (महावेदनीय)

का उपार्जन करता है। जो मनुष्य अग्नि को बुझाता है, वह अल्प और अल्प वेदना का भागी होता है। (क्योंकि:—हिंसा अल्प है, और जीवों की रक्षा होने से तथा महारम्भ के पाप को समाप्त करने से और अनुकम्पा वाले विचार प्रवाह से बहुत निर्जरा होती है) ऐसा नहीं है, कि आग लगाने वाला भी महापापी तथा आग बुझाने वाला भी महापापी। यह तो तेरापंथियों का अलाही कारखाना है, जिसमें मारना भी महापाप बचाना भी महापाप, सेवा करना भी और धड़ाधड़ शिर पर जूते मारना भी एक समान महापाप है।

तेरापन्थ

गृहस्थ रा पग हेठे जीव आवे तो साधु ने बचावणो कठे हीन चल्यो। भारी कर्मा लोगां ने भ्रष्ट करण नें ओ पिण घोचो कुगुरां घाल्यो ॥

(भी० अ० आठवीं गा० ३८)

अर्थात्:—गृहस्थ के पैर के नीचे आकर जीव मर रहे हों तो साधु गृहस्थी को सावधान करके भी जीव न बचावे, क्योंकि, यह बात शास्त्र में कहीं नहीं आई है; बल्कि मरते जीव को बचाने का अडंगा तो लोगों को भ्रष्ट करने के लिए कुगुरुओं ने चला दिया है।

इसी विषय में तेरापंथियों का स्वयं स्पष्टीकरण:—कोई मनुष्य पाप करता है, जैसे कि कसाई बकरे को कत्ल करके पाप-

उपार्जन कर रहा हो; अथवा किसी का गला घोंट कर गाली देकर जब कोई मनुष्य पाप-कर्म कर रहा हो उस वक्त साधु को नहीं रोकना चाहिए, और नहीं कुछ करना चाहिए। क्योंकि, संसार के झगड़ों में साधु का दखल देना सर्वथा अनुपयुक्त है। अतः साधु को पाप करते हुए को रोकना नहीं चाहिए। अगर कोई साधु रोकता है तो अन्तराय का और जीव बचाने का एकान्त पाप करना है।

जैनशास्त्रः—अगर कोई मनुष्य अकार्य करता होवे, अथवा भूल से उससे हो रहा हो, जिस प्रकार अविवेक से पैर के नीचे जीव आकर मर रहा हो तो साधु उस अकार्य में प्रवृत्त मनुष्य को शीघ्र रोके; और उसको बोध करा कर मरते हुए प्राणी की रक्षा करे। अगर ऐसा न करे तो उस साधु को निर्दयी मानना चाहिए।

पाठ देखिये

"त ओ आयरक्खाः—परिहरित्तएतं जहाधम्मियाए, पडिचोयणाए, पडिचोएत्ता भवई, तुसिणीए वा सिया उद्धित्तु वा आयाएगन्तमवक्कमेज्जा।"

(ठाणाङ्ग सूत्र ठाणा ३)

अर्थात्:—आत्मरक्षा के तीन बोल अगर कोई मनुष्य अकार्य में प्रवृत्त हो, जैसे कि, कसाई बकरा मार रहा हो, कोई पथिक अविवेक से जीवों को पैर तले कुचलरहा हो, ऐसे मनुष्य को साधु

जीव रक्षा रूपी धर्म का महालाभ बताकर रोके और समझाए कि तुम्हारे जैसे मनुष्य को ऐसा अकार्य करना तथा दूसरे जीवोंका गला काटना व पैरसे जीवोंको दरड़ना बिल्कुल अच्छा नहीं। अगर फिर भी सामर्थ्य से बाहर हो और किसी उपाय से भी न समझ सके, तो मौनव्रत धारण करके अन्यत्र चला जावे, वहां क्षण भर भी न ठहरे। अगर साधु इन अकार्य करते हुए मनुष्यों को उपदेश देकर अथवा किसी अन्य उपाय से मरते प्राणी की रक्षा न करेगा तो वह आज्ञा विराधक कहा जायगा।

तेरापंथः—कोई लाय सूं बतलाने काढ़ बचायो,
वले कूवे पड़ता नें बचायो।
वले तालाब में डूबता ने बाहर काढे,
वले ऊंचा थी पड़ता ने झालियो तायो॥
ए उपकार संसार तणो छे,
संसार तणो उपकार करे छे।
तिण रे निश्चय ही संसार वधे ते जाण।
(भी० अ० ढाल ११)

अर्थात्:—अग्नि में जलते जीवों को अगर कोई दयावान् मनुष्य बाहर निकाल कर बचावे, कूए में गिरते की प्राण-रक्षा करे, तालाब में डूबते को बाहर निकाले, तथा ऊँचे स्थान से गिरते हुए को ऊपर से ही झेलकर उसे प्राण दान दे तो यह सब संसार के उपकार करने को ही वह दयावान् मनुष्य उपार्जन

करता है। संसार का उपकार करने से निश्चय ही भवभ्रमण बढ़ता है। अर्थात् ऐसे पाप कर्म करने से ही प्राणी दुर्गतियों में भटकता फिरता है।

जैनशास्त्र:—ठाणाङ्ग सूत्र में तीसरे ठाणे में भगवान् ने तीन प्रकार के उपकारी बताए हैं। जिनका उपकार चुकाया नहीं जा सकता। उन में तीसरा उपकारी मौत के मुंह से बचाने वाला है। जो अनुकम्पा युक्त भावना द्वारा मरते प्राणी की प्राण-रक्षा करके प्रचुर पुण्य का उपार्जन करता है।

तथा:—भगवती सूत्र में भी ऐसा फरमाया है, कि जो मनुष्य अग्नि में जलते जीव को बाहर निकाल कर उस की उष्ण-तापमयी व्यथा को दूर करता है, कुए में गिरते को बचाकर उसका शोक मिटाता है, तालाब में डूबते की रक्षा कर के उसे प्राण-दान देता है, तथा ऊँचे स्थान से गिरते को ऊपर से ओट कर जो कोई उसे अभय दान देता है, वह प्रचुर पुण्य अर्थात् सातावेदनीय पुण्य प्रकृति को बांधता है। जैसे:—

अजूरण याए, अदुक्खणायाए, असोपण याए।"

(भगवती सूत्र शतक ७३०६ पृ० ११७)

अर्थात्:—शोक मिटाने से, दुःख मिटाने से, भय दूर करने से महा-पुण्य का उपार्जन होता है। जिससे धर्म की ओर मनुष्य अग्रसर होता है। ऐसे महापुण्योत्पादक कार्य करने से प्राणी कभी भी दुर्गतियों में नहीं भटकता।

विशेष विचार:—ऐसे पुण्य कार्य को पाप कार्य कहने वाले स्वयं ही संसार के जन्म मरण रूप चक्र में फँसते हैं।

तेरापंथ

(१) कोई वैद्यगरी करने लोकां री रोग गमावे ने जीव बचावे। ओ उपकार लोकां सूं कीन्हो, आगे लाग्यो राग चलियो जावे ॥

(ढा० ११ गा० ४६)

(२) गृहस्थ ने औषध भेषज देई न अनेक उपाय कर जीव बचावे। यह संसार तणो उपकार किया में मुक्ति रो मार्ग मूढ़ बतायो, भेषधारी भूलां रौ निर्णय कीजे।

(अ० ढाल ८ पृ०२६)

अर्थ (१):—यदि वैद्य किसी का रोग दूर करता है, और दयावश मृत्यु के मुँह से बचाता है, तो यह भी राग है। इसलिए ऐसा करना एकान्त पाप है।

अर्थ (२):—औषधि भेषज आदि देकर अथवा अन्य किसी उपायों से रोगी के रोग को दूर करना, अपना भवभ्रमण बढ़ा लेना है। मूढ़ लोग इसे मुक्ति का मार्ग बताते हैं।

हे भेषधारियो! अपनी इन भूलों का निर्णय करो, फिर न कभी ऐसे कार्यों में पुण्य बता देना यह तो एकान्त पाप के कार्य हैं।

जैनशास्त्र:—अगर वैद्य स्वार्थ पूर्ति के लिए रोगियों की चिकित्सा करता है, तो यह बात अलग है। यह संसारी व्यवहार है। हां अगर वैद्य अनुकम्पा से किसी रोगी की निःस्वार्थ भाव से चिकित्सा करता है, तो वह महान् पुण्य का उपार्जन करता है, तथा सातावेदनीय पुण्य प्रकृति को बांधता है।

(भगवती सूत्र)

जो वह औषध भेषज रूप परिग्रह का सम्यक् त्याग करता है, उससे धर्म का महा लाभ होता है।

विशेष विचार :—ऐसे अनुकम्पा पूर्ण शुभ कार्यों को भी पाप बताना अपनी मूर्खता प्रकट करना है।

तेरापंथ—व्याधि अनेक कोढ़ादिक सुनीने,
तिण ऊपर वैद्य गोली चलाई ने आवे।
अनुकम्पा आणी साजे कीधो,
गोली चूरण दे रोग गंमावे ॥
आ अनुकम्पा सावद्य जाणो।

(ढा० १, पृ० ४)

अर्थात् :—कोढ़ आदिक अनेक व्याधियां सुनकर रोगी के लिए वैद्य आया, और उसने दयावश होकर गोली चूरण आदि देकर रोग मिटा दिया। यह दया "सावद्य" समझो, अर्थात् पाप पूर्ण मानो।

जैन शास्त्र :—अनुकम्पा करके औषध पथ्य आदि का कामी होने से सनत्कुमारेन्द्र चरिम भाव वाला बना।

(भगवती सूत्र)

इसी प्रकार ठाणांग सूत्र के नौवें ठाणा में नौ प्रकार के पुण्यों में किसी का हित चाहने से पुण्य बन्ध होता है ऐसा फरमाया है। इन पाठों के अनुसार वैद्य भी अनुकम्पा करके किसी रोगी का दवाई चूर्ण देकर रोग मिटावेगा तो अवश्य वह पुण्य का खजाना पावेगा। अनुकम्पा में पाप बताना महा मोहनीय कर्म बांधना है।

तेरापंथ :—

वांछै मरणो जीवणो तो धर्म तणो नहीं अंश।
ए अनुकम्पा कीधां थकां वधै कर्म नो वंश॥

अर्थात् :—अगर कोई प्राणी जीने और मरने की इच्छा करे तो उसमें धर्म का लेशमात्र भी लाभ नहीं होता। दूसरे प्राणी की रक्षा के लिए अनुकम्पा करने से कर्मों का वंश (समुदाय) ही बढ़ता है।

अर्थात् :—पाप का भार अधिक ही होता है, जिस के कारण अनेक दुर्गतियों में जाकर उसका दुष्फल भोगना पड़ता है।

जैन शास्त्र :—

वांछै मरणो जीवणो धर्म तणे जे काज।
सतधारी जे शूरमां (ज़ां) सारया आत्मकाज॥

अनुकम्पा कीधां थकां कटे कर्म नो वंश।
ठाणा अङ्ग चौथे कह्यो मोह तणो नहीं अंश ॥

(जवाहिराचार्य कृत अ० ढा० गा० २)

अर्थात् :—जो कोई मनुष्य धर्म के लिए जीवे और मरने की इच्छा करता है, वह ही शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करता है; और धर्म के बल से अज्ञान नष्ट करता है। क्योंकि :—

ऐसे ही धर्मात्मा सत्यधारी पुरुषों ने वीरता से धर्म के लिए जीने, और धर्म के लिए मरने की प्रतिज्ञा करके अपनी आत्मा का और दूसरों की आत्मा का कार्य साधा है।

विशेष :—जो भी मनुष्य अनुकम्पा करता है, उसके पाप कर्मों का समूलतः नाश हो जाता है। ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं। जिसमें स्पष्ट दर्शाया गया है, कि जो पुरुष अपनी और पर की अनुकम्पा करता है वह ही साधु है दूसरा नहीं।

आयाणुकम्पए, णाम मेगे पराणुकम्पए, जाव० ॥

(ठाणाङ्ग सूत्र, ठाणा, ४)

अर्थात् :—संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं।

१—अपनी आत्मा की ही अनुकम्पा करने वाले।

२—परोपकार की भावना को लिए अपर जीवों की ही अनुकम्पा करने वाले।

३—अपनी और दूसरों की भी अनुकम्पा करने वाले।

४—न अपनी आत्मा की अनुकम्पा करने वाले, न दूसरों की आत्मा की अनुकम्पा करने वाले, भी मनुष्य होते हैं।

इस चौभङ्गी के तीसरे कोष्ठक का स्वामी, भगवान् ने सच्चे साधु को ठहराया है। जो अपनी आत्मा के कल्याण के लिए तप त्याग सत्तरह प्रकार के सयम का पालन करता है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो वह साधु नहीं समझा जा सकता।

तेरापंथ :—

जीव बचावे मुनि नहीं पर नें न कहे बचाव,
भलो न जाणे बचाविया० ॥

(अ० ठा० ६)

अर्थात् :—साधु किसी जीव की स्वयं रक्षा करे नहीं, दूसरे को रक्षा करने के लिये उपदेश भी न दे। अगर कोई जीव रक्षा कर रहा हो तो साधु उसको मन से भी अच्छा न जाने। क्योंकि :—

जीव रक्षा करने में एकान्त पाप है।

जैन शास्त्र :—

सब्बे हिं भूए हिं दयाणुकम्पे खन्तिक्खमे संयम बंभयारी।
सावज्ज जोगं परिवज्जयन्तो चरिज्ज भिक्खु सुसमाहि इन्दिए॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० २१, गा० १३)

अर्थ :—शास्त्रकार साधु का मुख्य कर्त्तव्य ही जीव रक्षा बताते हैं। कि, साधु सर्व जीवों की अनुकम्पा और दया करे,

पुनः क्षमा, संयम और ब्रह्मचर्य आदि महाव्रतों का पालन करता हुआ विचरे। साधु सावद्य योगों का परित्याग करता हुआ, इन्द्रियों पर विजय पाकर भिक्षु निष्कंटक संसार में विचरे। इस शास्त्र के पाठ में जीव बचाना ही साधु का प्रथम कर्त्तव्य बताया गया है। इसलिए शास्त्र में :—

"सव्वे हिं भूए हिं दयाणुकम्पे"

आदि पाठ आया है। अर्थात् :—सब जीवों की दया और अनुकम्पा करना ही साधु का मुख्य कर्त्तव्य है।

अब यह पाठ तो रहा साधु के जीव बचाने के विषय में, अब यह आप साधु का उपदेश और प्रयत्न क्या होना चाहिए, शास्त्रकार बताते हैं :

जइतंसि भोगे चइउं असत्तो,
अज्जाइं कम्माइ करे हिं रायं।
धम्मेठिओ सव्व पयाणु कम्पी,
तो होसि देवो इओ विउव्वी ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० १३ गा० ३२)

अर्थ :—हे राजन्! हे संसारा सक्त! हे लिप्त! अगर तू विषय वासना को नहीं छोड़ सकता, तप सयम का पालन नहीं कर सकता; सांसारिक उपभोगों को छोड़ने में एक दम असमर्थ है। तब तू गृहवास में ही अपने धर्म में दृढ़ बना हुआ दया आदि आर्य धर्म करेगा, तथा सब जीवों को अनुकम्पा दान देगा,

और उन दुःख संकट से घिरे से घिरे हुए प्राणियों के बचाने का प्रयत्न करेगा, तो भी तुझे स्वर्ग की प्राप्ति हो जावेगी।

इस पाठ में स्पष्ट दर्शाया है कि जो कोई प्राणी जीवों को बचाता है, और उनकी रक्षा के लिए अपना पूरा बल लगा देता है, ऐसा पुरुष बेशक वह गृहस्थी ही क्यों न हो; उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है।

परामर्श :—ऐसा पाठ देख लेने पर भी जीव बचाने में एकांत पाप बताना अज्ञान का परिणाम नहीं तो और क्या समझना चाहिए।

तेरापंथ :—जीव रक्षा करनी साधु के लिए भी आवश्यक अगर किसी शास्त्र के मूल पाठ में बताई गई हो, और साधु जीव रक्षा निमित्त क्या क्या कार्य करता है, उसका भी निर्देश किया गया हो तो दिखाइए ?

हमारी समझ में तो साधु बनने का उद्देश्य जीवन रक्षा नहीं, बल्कि अपनी आत्मा को पाप से बचाना हैं। छः काय के आरंभ का और गृहस्थारंभ का परित्याग करना है।

हां अगर साधु का एक भी ऐसा कार्य हो जिस में प्राणियों के प्राण की रक्षा के लिये ही उसे ऐसा करना पड़ता हो। अर्थात् जिसका उद्देश्य जीव रक्षा ही हो तो प्रमाण के लिए शास्त्र पाठ दिखलाइये ?

जैनशास्त्र:—

वेयण वेयावच्चे इरियट्ठाए य संयमट्ठाए।
तह पाणवतियाए छट्ठं पुण धम्म चिन्ताए॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० २६ गा० ३३)

अर्थात्:—साधु छः कारण से आहार करता है।

१—क्षुधा दूर करने के लिए,
२—वैयावच्च करने के लिए,
३—इरिया शोधन के लिए,
४—संयम-पालन के लिए,
५—अपने प्राणों तथा छः कायिक प्राणियों की रक्षा के लिए
६—धर्म ध्यान चिन्तवन के लिए।

इन छः कारणों से साधु आहार का उपभोग करता है। इन कारणों में से पांचवां कारण शास्त्रकार ने:—"तह पाणवतियाए" कहा है। अर्थात् अपने तथा छः काय के प्राणों की रक्षा के लिए साधु आहार करे।

तेरापंथी इन दोनों बातों को एकान्त पाप में गिनते हैं। क्योंकि तेरापथियों के पास जीवरक्षा के विरोध में युक्ति यही है, कि साधु ने जब अपने प्राणों की ही रक्षा नहीं करनी तो दूसरे प्राणियों की रक्षा वह कैसे कर सकता है। बात भी ठीक है जब हमने ही व्रत कर लिया है तो गुरुजनों के लिये भी आहारादि

कैसे लाया जाये। यह बुद्धि की विचित्र खोज है। परन्तु शास्त्र-कार तो इन दोनों का ही कारण बताते हैं।

तेरापंथियों को चाहिए अगर उन्होंने आहार करना है तो छः काय के प्राणों की भी रक्षा करनी पड़ेगी, नहीं तो उन्हें आहार का त्याग कर देना पड़ेगा, किन्तु आहार के परित्याग के कारण भी शास्त्र ने जीव रक्षा ही उद्देश्य रखकर बतलाए हैं। जैसे कि:—

आयं के उवसग्गे तितिक्खया बंभचेरगुत्ति।
सुपाणिदया तव हेउं सरीर वोच्छेयणट्ठाए॥

(उत्तराध्ययन अ० २६ गा० ३५)

अर्थात्:—साधु छः कारणों से आहार का त्याग करे।

१—असाध्य रोग होने से

२—मरणान्तक उपसर्ग होने से

३— ब्रह्मचर्य पालने के लिए

४—छः काय और त्रसकाय के जीवों की दया के लिए

५—तप करने के लिए

६—शरीर को उत्सर्जन करने के लिए

इस पाठ में भी चौथा कारण छः काय और त्रसकाय के जीवों की रक्षा करना ही बतलाया है। अब देखिए कि साधु भोजन स्वयं क्यों नहीं तैयार करते, इस में क्या कारण है।

तहेव भत्तपाणेसु पयणे पयावणेसु य ।
पाण भूय दयट्ठाए न पये न पयावये ॥
(उत्तराध्ययन सूत्र)

अर्थात्:—आहार बनाने में त्रस (बे इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक) और स्थावर (एकेन्द्रियादि) जीवों का वध होता है। इसलिए साधु उन की दया के लिए भोजन स्वयं न बनावे, न बनवावे और न ही बनवाने को अच्छा समझे।

इस पाठ से यह स्पष्ट हो गया है, कि जो साधु भोजन बनाने का परित्याग करता है वह केवल त्रस और स्थावर जीवों को बचाने के लिए ही परित्याग करता है।

साधु बनने का उद्देश्य ही छः काय के जीवों की रक्षा करना है। अपने पवित्र उद्देश्य अर्थात् जीवों को रक्षा करने में भी एकान्त पाप बताना अपनी विरोधी भावना को प्रकट करना है।

तेरापंथः—त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा में समान पाप है। त्रस के हिंसक और स्थावर जीवों के हिंसक सदृश ही पापी होते हैं। जैसे उन्होंने लिखा है:—

"जिम कोई कसाई पांच सौ २ पञ्चेन्द्रिय जीव नित्य हणे छे, ते कसाई ने कोई मारतो हुवे तो तिण ने उपदेश देवे। ते तिण ने तार वाने अर्थे पिण कसाई ने जीव तो राखण ने उपदेश न देवे। जो कसाई जीवतो रहे तो आ छो, इम कसाई नो जीवणो

वांछणो नहीं। केई पञ्चेन्द्रिय हयणे केई एकेन्द्रि हणे छे। ते माटे असंयति जीव ते हिंसक छे। हिंसक नो जीवणो वांछियां धर्म किम हुवे ?"।

अर्थात्:—तेरापंथी साधु अपने सिवाय सब को वैसा ही हिंसक कहते हैं, जैसा कि हिंसक नित्य पांच सौ २ गाय या बकरे आदि पञ्चेन्द्रिय जीव मारने वाला कसाई होता है; तथा सब जीवों को चाहे वह श्रावक हो या तेरहपंथ सम्प्रदाय के सिवाय अन्य किसी सम्प्रदाय का साधु भी हो, नित्य पांच सौ गाय मारने वाले कसाई की तरह हिंसक ठहरा कर कहते हैं, कि ऐसे हिंसक को बचाने अथवा दान देने या उनकी सेवा सहायता करने से धर्म कैसे हो सकता है।

यह सब तो पाप ही है। तेरापंथी साधु एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों को समान तथा एकेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा को समान कहते हैं, तथा एकेन्द्रिय जीव की हिंसा करने वाले को भी उस कसाई की तरह हिंसक कहते है, जो पांच सो गाय बैल नित्य मारता है।

जैनशास्त्रः—सब्जी का भोजन आर्य है। मांस का भोजन अनार्य हैं। आर्य भोजन करने वाले को स्वर्ग और अनार्य भोजन करने वाला नरक में जाता है।

अब आप देखिए वे इन्द्रियादि जीवों के समारम्भ करने से क्या लाभ होता है। और पञ्चेन्द्रिय जीवों के समारम्भ करने से क्या फल मिलता है। जैसे—

"वे इंदयाणं जीवा असमारंभमाणस्स चउव्विहे संजमे कज्जइ तंजहाः—जिब्भमयाओ सोक्खामो अवरो वेत्ता भवइ, जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजो गेत्ता भवइ। फासामयाओ सोक्खाओ अववरो वेत्ता भवइ। फासाभामयाओ दुक्खाओ असंजोगेत्ता भवइ, एवं वे इन्दिया जीवा समारंभमाणस्स चउव्विहे असंजमे कज्जइ"॥ (ठाणाङ्ग सूत्र)

अर्थात्ः—वे इन्द्रिय द्वीन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने से और उन की रक्षा करने से चार प्रकार के सुख रूप फलों की प्राप्ति होती हैः—

१—वाणी का मधुर होना।

२—जिह्वा का नीरोगपन होना

३—स्पर्शेन्द्रिय को सर्व सुख साधन मिलें

४—त्वचा का मुलायम व स्वस्थ रहना

ये चार प्रकार के लाभ ने इन्द्रिय जीवों की रक्षा करने में प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार वे इन्द्रिय जीवों का समारंभ करने से चार प्रकार के दुःख मिलते हैः—

१—गूंगापन

२—रोगिणी जिह्वा

३—स्पर्श सुखों की अप्राप्ति

४—स्पर्शेन्द्रिय से ही शून्य

वे इन्द्रिय जीवों की हिंसा करने से इन चार प्रकार के कष्टों को भुगतना पड़ता है।

इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जीवों की रक्षा करने से दश प्रकारका सुख मिलता है, और हिंसा करने से दश प्रकार के दुःख मिलते हैं। जैसेः—

"पंचिंदियाणं जीवाणं असमारंभ माणस्स दसविहे संयमे कज्जइ। तं जहाः—सोयामयाओ अववरो विता भवइ, सोयामएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ। एवं जाव फासामएणं दुक्खेणं असंजोइता, भवइ। एवं असंयमो भणियव्वो" ॥

(ठाणाङ्ग सूत्र ठा० १०)

अर्थातः—पञ्चेन्द्रिय जीवों की रक्षा करने से दश प्रकार के सुख का लाभ होता हैः—

१—श्रोत्रेन्द्रिय (कान) को पूर्ण सुख प्राप्ति, और कान से होने वाले दुःखों से विमुक्ति।

२—चक्षु इन्द्रिय (आँख) को लुभाने वाले आनन्द का मिलना, और नेत्र का सर्वथा नीरोग रहना।

३—घ्राणेन्द्रिय (नाक) को अभीष्ट वस्तुओं का मिलना और रोग आदि से रहित होना।

४—रसेन्द्रिय (जिह्वा) को सुस्वादु पदार्थों का उपभोग करना और दुःखों का विनाश होना।

५—स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) को उबटन आदि नर्म वस्तुओं से स्पर्श सुख लेना और दुःख से सर्वथा छुटकारा मिलना।

यह तो पञ्चेन्द्रिय जीवों का समारंभ न करने का फल।

इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने से दश दुष्फल प्राप्त होते हैं। जैसेः—

श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्श आदि इन्द्रियों को किसी भी आनन्द दायक वस्तु का संयोग प्राप्त न होना, और सर्वथा बहरापन, अन्धत्व, सूंघने की शक्ति से शून्य होना, गूंगापन, और त्वचा का रोगिणी रहना या अन्य रोगों से लिप्त रहना पड़ता है।

पाठक समझ गए होंगे कि त्रस जीवों की हिंसा की समानता नहीं है तो स्थावर और त्रस जीवों की हिंसा को समान कहना कितना अज्ञान है।

तेरापंथियों की मान्यतानुसार मनुष्य का गला काट देना और वनस्पति काट लेना एक समान है।

शास्त्र में भी त्रस जीवों की हिंसा करने से ऐसे २ कठोर दुःखों का प्राप्त होना लिखा है, परन्तु स्थावर जीवों की हिंसा करने से भी इतना ही भयानक दुःख मिलता है। ऐसा कहीं उल्लेख नहीं आया, कि स्थावर और त्रस जीवों की हिंसा में समान पाप है।

शास्त्र में तो यह स्पष्ट कह दिया गया है, कि स्थावर जीवों की अपेक्षा त्रस जीवों की हिंसा में महान् पाप होता है; परन्तु तेरा-

पंथी स्थावर और त्रस जीवों की हिंसा में समान पाप मानते हैं, न जाने यह मन घडन्त सिद्धान्त तेरापंथियों ने कहां से उठाया है। कम से कम तेरपंथियों को इतना तो समझ लेना था, कि हिंसा क्या होती है। जीवों की हिंसा से क्या अभिप्राय है? तेरापंथियों ने तो इस बात को पल्ले बांध लिया है, कि सर्व जीव जीवत्वेन समान हैं, किन्तु इस बात को उन्होंने नहीं सोचा कि प्राणंत्व तथा पुण्यत्व से सर्वजीव समान हैं या कि नहीं। उन्होंने तो कानी हथिनी की तरह सर्वतः एक ही आंख से देख लिया है, कि जीव जीव की हैसियत से समान है।

अगर वे इस बात से भी परिचत हो जाते कि एकेन्द्रिय जीव में चार प्राण ही होते हैं, जिन्हें हम जीव मर गया नाम से व्यवहृत कर देते हैं। वास्तव में जीव के प्राण समाप्त हो जाया करते हैं, और जीव अपना कोई नया घर ढूंड लेता है, वहां जाकर वह नए प्राण धारण कर लेता है।

उसमें हिंसा की कोई बात नहीं हिंसा तो उसे कहते हैं, कि जब कोई किसी का गला काटता है, या मर्मान्तिक पीड़ा पहुंचाता है, तो मरने वाला प्राणी आर्त रौद्रध्यानस्थ हुआ पाप संचय किया करता है, और घातक उग्र विचारों से बुरा चिन्तवन करता हुआ मारा करता है। उस समय मारने वाला परवशपने असह्य पीड़ा सहता है, किन्तु मारने वाला बड़े बुरे विचारों से उसके प्राणान्त करने में तत्पर रहता है। इसी का नाम वास्तव में हिंसा है।

आचार्य उमास्वाति

"प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा"

(तत्त्वार्थ सूत्र ७।८)

अर्थात्:—जो प्राण वध प्रमत्त, योग से प्रमाद के वशीभूत हो कर किया जाए वह हिंसा है तात्पर्य कि, किसी प्राणी के बुरे विचारों से प्राण निकाल देने का नाम हिंसा है।

पञ्चेन्द्रिय जीव को मारने के लिए मनुष्य को जितना स्वार्थान्ध बनना पड़ता है, जितने विकट और हिंसक विचार मन में लाने पड़ते हैं उतने स्थावर जीवों को मारते हुए उग्र कुविचार मनुष्य के हृदय में जाग्रत नहीं हुआ करते, इन में पाप भी न्यूनाधिक है।

स्थावर जीवों के आरंभ में अल्प पाप और त्रस समारंभ में महापाप होता है।

शास्त्र में त्रस जीवों के मार देने से ही महा मोहनीय कर्म बान्धना कहा है।

स्थावर जीवों के वध से नहीं माना गया। राजा, राष्ट्रनेता, और साधु आदि के मार देने से ही महामोहनीय कर्म का बन्ध होना कहा है, वैसे नहीं।

जान बूझ कर स्थावर हिंसा करने वाला श्रावक बन सकता है, किन्तु जान बूझ कर त्रस प्राणियों का विराधक श्रावक नहीं बन सकता।

इन बातों से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है, कि स्थावर और त्रस प्राणियों की हत्या में महदन्तर है।

इन में समान पाप बताना अपनी खोखली बुद्धि का परिचय देना है।

तेरहपंथ और जैन धर्म

मैं पहले भी लिख आया हूं, कि तेरह पंथ और जैन धर्म में सैद्धान्तिक और धार्मिक तथा सांस्कृतिक अत्यन्त गहरा मतभेद है। उन्हें एक कह देना सत्य का गला घोट देना है। इसी बात को अब मैं अपने स्फुट विचारों में प्रकट करूंगा।

१—तेरापंथ :—धर्म के दो भेद हैं संवर और निर्जरा।

२—जैन धर्म, धर्म के दो भेद हैं, श्रुत और चरित्र। (देखिए कितना भेद है)

३—तेरापंथ, अनुकम्पा के दो भेद हैं,सावद्य और निरवद्य।

४—जैन धर्म, अनुकम्पा सदा ही निरवद्य होती है, सावद्य नहीं।

५—तेरापंथ, प्राणी के प्राण रक्षा करने में एकान्त पाप है।

६—जैन धर्म, प्राणी के प्राण रक्षा करने में एकान्त धर्म होता है।

७—तेरापंथ, रात्री के वक्त साधु के मकान में स्त्रियां भी आ सकती है।

८—जैन धर्म, जैन साधु दिन में भी स्त्रियों से प्रमाणोपेत बात कर सकता है, रात्री में तो साधु के मकान में स्त्रियों का आना साधुता के लिए भारी कलङ्क है।

९—तेरापंथ, दीक्षा कुपात्र को ही दी जाती है।

१०—जैन धर्म, कुपात्र को दीक्षा देने वाला स्वयं कुपात्र होता है, और निशीथ सूत्र में कुपात्र को दीक्षा देने वाले के लिए चौमासिक प्रायश्चित् लेने का दण्ड लिखा है।

११—तेरापंथ, कुपात्रों का ही अन्न साधुओं को खाना पड़ता है।

१२—जैन धर्म, कुपात्र का अन्न नहीं खाना चाहिए। कुपात्रों का अन्न खाने वाला सुपात्र कैसे बन सकता है? वह तो कुपात्र ही रहेगा। कहा भी है :—

जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन।

१३—तेरापंथ, विहार करते हुए मार्ग में अपने साथ एक या दो गृहस्थी अवश्य रखने चाहिए और उनसे भोजन लेकर भी खा लेना चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं।

१४—जैन धर्म, विहार करते हुए साधु को साथ में चलते हुए गृहस्थी का अनुमोदन भी नहीं करना चाहिए, और न ही उनसे भोजन लेना चाहिए। अगर कोई साधु लेता है तो उसे शास्त्रानुसार चौमासी प्रायश्चित् आता है।

१५—तेरापंथ, एक गुरु के ही सब शिष्य होने चाहिए।

१६—जैन धर्म, समयानुसार सब कार्य उचित प्रणाली से ही होने चाहिये। शास्त्र में तो ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं आता, कि सर्व शिष्य एक गुरु के ही होने चाहिये।

हां शास्त्र में ऐसे पाठ तो बहुत आते हैं, जहां भगवान् ने स्वयं अपने हाथ से दीक्षा दी; किन्तु उन्हें शिष्य किसी और ही स्थविर का बनाया। जैसे :—

"ततेणं अरहा अरिट्ठनेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स तं इब्भाइयं अणगार सहस्सं सीसत्ताए दलयति" ॥

(ज्ञाता सूत्र अध्ययन ५)

अर्थात् :—श्री अरिष्टनेमी (नेमिनाथ) भगवन्त ने इब्भ वगैरह एक हजार अनगार को थावच्चा पुत्र अनगार के शिष्य बनाए।

ऐसे ही अन्तगढ़ सूत्र में भी उल्लेख आए हैं। जिनमें यह बात स्पष्ट की गई है, कि भगवान महावीर ने भी अपने हाथ से दीक्षा तो दी किन्तु शिष्य किसी अन्य स्थविर के बनाए।

१७—तेरापंथ, सर्व साधुओं का एक ही आचार्य होना चाहिए।

१८—जैन धर्म, भगहावीर के समय में भी एकादश गणधर थे। कल्प सूत्र में यह आज्ञा खुली दी है, कि श्री संघ अगर दो या इससे अधिक आचार्य बनाना चाहे तो बना सकता है।

अतः इनकी उपर्युक्त आशंका भी निराधार सी दीखती है।

१६—तेरापंथ, ओसवाल जाति का ही मनुष्य आचार्य-पद का अधिकारी हो सकता है। दूसरी जाति का नहीं।

२०—जैन धर्म, रूढ़िवाद से चलने वाले जातित्व वाद के घमण्ड को समूलतः नष्ट करना और कर्मवाद का प्रचार करना ही जैन धर्म का परम उद्देश्य है। आचार्यपद आचार्य के गुणों से जो भी पुरुष युक्त हो, बेशक वह किसी भी जाति से सम्बन्ध रखता हो, वह सहर्ष आचार्य बनाया जा सकता है।

स्वयं श्रमण नायक भगवान् महावीर क्षत्रिय थे। गोतम स्वामी और सुधर्मा स्वामी आदि गणधर ब्राह्मण थे।

२१—तेरापंथ, अग्रवाल और ओसवाल जाति के बिना किसी को भी साधु नहीं बनाना चाहिए, अगर बनाना ही पड़े तो उससे आहार पानी इकट्ठा नहीं करना चाहिए [जैसा कि, तेरापंथी करते हैं ओसवाल के सिवा दूसरी जाति के साधु तेरापंथी से भी आहार एक माण्डले पर नहीं करते।]

क्योंकि, दूसरी जाति का मनुष्य संयम अच्छी प्रकार नहीं पाल सकता।

२२—जैन धर्म, संसार के प्रत्येक मनुष्य को भगवान् ने खुली आज्ञा दी है, कि पांच महाव्रत धारण करके प्रत्येक मनुष्य श्रमण निर्ग्रन्थ बन सकता है। सब साधु एक है, उनकी जाति पांति सब कुछ साधु ही है। उनका एक माण्डले पर ही आहार करना प्रशस्ततर है। जैन धर्म कर्मवाद को मानता है। जाति-वाद को नहीं। भगवान् महावीर उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाते हैं:—

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

(उ० अ० २५ गा० ३३)

अर्थात् :—आचरण से ही ब्राह्मण होता है, और आचरण से ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी आचरण से होता है।

जातिवाद पर विश्वास रखने वाले इस पाठ पर अच्छी प्रकार विचार करें, और निम्न लिखित बात को ध्यान से पढ़ें।

गोतम गणधर कौन थे ?	ब्राह्मण।
अभयकुमार कौन थे ?	क्षत्रिय।
जम्बुकुमार कौन थे ?	वैश्य।
हरिकेशबलमुनि कौन थे ?	चांडाल शूद्र।
महर्षि मेतारज कौन थे ?	चां० शूद्र।

यह है जैन धर्म का मुनि संघ। जिसमें हमें निरवच्छिन्न अविराम गति से बहता हुआ प्रत्येक जाति का संगम रूप उद्गम दिखाई देता है। आज का संसार जातिवाद की हानि को समझ चुका है।

विशेषतः भारतवर्ष में तो श्रमण नायक भगवान् महावीर ने ही आर्य जाति का विशाल निर्माण कर इन रूढ़ि प्रचलित ऊँच, नीच, ब्राह्मण और शूद्र आदि भेदों को व्यर्थ सा बना डाला है। आर्य आचरण करने वाले ही आर्य जातीय हैं ऐसा लक्षण कर के तो समस्त आर्य गुणज्ञ पुरुषों को एक माला में गूंथ दिया है।

आज भी तेरापंथी धर्म की दुहाई देकर जातिवाद के फासिज्म को जन्म देना चाहते हैं, किन्तु शास्त्र के नाम पर यह घोर अनर्थ हम भी नहीं होने देंगे।

तेरापंथी और जैन धर्मी

जिस समाज का नेता ही दया, दान और परोपकार का शत्रु हो, धर्म का विरोधी हो तो उसकी भावी सन्तान कैसे दयालु वदान्य (दानी) और धर्मात्मा बन सकती है।

इतिहास साक्षी है, आज तक जितने भी मत, पंथ और धर्मों ने संसार पर फैलना प्रारम्भ किया है, वे सब अपने २ गुणों को भी साथ में फैलाते चले हैं। प्रत्येक धर्म और पंथ की भिन्न भिन्न विशेषताएं होती हैं, किन्तु मैं तेरापंथियों और शुद्ध पुरातन जैन धर्मियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा। क्योंकि, ये ही आदर्श कथाएं युग युग तक नव जीवन सञ्चार किया करती हैं।

१—सरदार शहर की एक घटना है, कि एक तेरापंथिन बहिन के सामने उसके पुत्र ने अफीम खाली बालक अबोध था। माता ने उसे इसलिए नहीं रोका, कि इसमें महा पाप लगेगा। उस बहिन ने अपने तेरापंथ के नाम पर अपने पुत्र का बलिदान कर दिया। उसके हृदय की दृढ़ता प्रशंसनीय है, किन्तु नासमझी दयनीय है। इसके लिए तेरापंथ के सिद्धान्त और उसके प्रचारक ही जिम्मेवार है। इस कथा से निर्दयता का कितना सुन्दर उपदेश मिलता।

माताओ ! ज़रा ध्यान से पढ़ना

२—सन् १६४२ की अतिवृष्टि के कारण सरदार शहर की तरफ बहुत से ग़रीब बे घर बार हो गए थे। खाने को कुछ रहा नहीं। सहायता के लिए चन्दा एकत्रित किया गया। तेरापंथियों की ओर से कुछ नहीं मिला। सुना गया है कि सरदार शहर के एक धनी सेठ को बहुत दबाया गया तो उसने हिचकैते हुए और पाप समझते हुए बड़ी कठिनाई से दो सौ रुपए दिए।

साथ में यह हिदायत करदी कि इन रुपओं को अनाज खरीदने में मत लगाना। दानिओ ! ज़रा सावधान होकर ही दान देना चाहिए। अब परिग्रह के त्यागने में और अनुकम्पा करने में भी एकान्त पाप लगने लग पड़ा है ?

३:—सरदार शहर में सोहनलाल जी वरडिया नाम के एक सज्जन जो कट्टर तेरापंथी श्रावक थे। सन् १६२८-२६ के लगभग वे अपना एक मकान बना रहे थे। मकान बनाने के लिए पानी भरने के लिए उन्होंने मकान के सामने एक हौज बनवाया था। उस हौज में पानी भरा हुआ था। एक बछिया उस हौज में गिर गई और तड़फड़ाने लगी। सोहनलाल जी वहां मौजूद थे। उस ने स्वयं अपने मजदूरों की सहायता से उस बछिया को निकाल दिया। कुछ दूसरे लोग जो तेरापथी नहीं थे, वहां खड़े थे। उन्होंने सोहनलाल जी से कहा कि आप के धर्मानुसार तो यह बछिया निकाल देने का कार्य एकान्त पापमय है। सोहनलाल जी ने कहा कि पाप कार्य कैसे हुआ ? मैं ने बछिया को कष्ट तो दिया

ही नहीं, बल्कि कष्ट से बचाया है। क्या किसी दुःखी की करुणा भरी चीत्कार सुनकर उसे दुःख से छुड़ा देना पाप है? सोहनलाल जी के बाप दादा तेरापंथी श्रावक थे। इसी से सोहनलाल जी भी तेरापंथी श्रावक कहलाते थे। वास्तव में तेरापंथ के सिद्धान्त क्या और कैसे हैं? यह उन को पता न था। लोगों ने कहा आप हम पर नाराज़ मत होइये, किन्तु तेरापंथ के आचार्य कालुराम यहां ही विराजते हैं, उन्हीं से जाकर पूछ लीजिए। सोहनलाल जी बरडिया उसी समय श्री कालुराम जी के पास गए। उन्होंने आचार्य से समस्त घटना सुनाई और प्रश्न किया, कि महाराज! केरड़ी के बचा देने से मुझे पुण्य हुआ या पाप? आचार्य जी ने उत्तर दिया:—न धर्म हुआ, न पुण्य किन्तु पाप हुआ।

सोहनलाल जी ने कहा ऐसा क्यों? मैंने उस केरड़ी को कोई दुःख तो दिया ही नहीं फिर मुझे पाप क्यों हुआ?

श्री कालुराम जी ने कहा, कि वह केरड़ी जिसे तुमने बचाया है, वह खाएगी, पान करेगी जिसमें असंख्य जीवों की हिंसा होगी। फिर वह मैथुन का पाप करेगी। उसकी सन्तान होगी। वह भी खाएगी, पान करेगी; और मैथुन आदि पाप करेगी। इस प्रकार उस केरड़ी के कारण पाप की जो परम्परा चली वह तुम्हें भी लगेगी।

उस दिन सोहनलाल जी को अपने धर्म का असली स्वरूप ज्ञात हुआ। उन्होंने श्री कालुराम जी महाराज से कहा कि आप

अपने धर्म को अपने पास ही रखिए। मुझे आप का यह धर्म नहीं चाहिए। मैं तो अब तक धर्म का यह सार समझा हूं :—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

जो अपने आत्मा को बुरा लगता है, वह व्यवहार दूसरों के साथ न करो। अर्थात् दूसरों के साथ भी वह व्यवहार करो जो अपने आत्मा को अच्छा लगता है।

इस के अनुसार यदि मैं पानी में डूबने लगता तो यही चाहता कि मुझे कोई यहां से बचाले। अनुभव सिद्ध यही बात वह केरड़ी भी चाह रही थी, फिर मैंने उसे बचा दिया तो मैं पाप का भागी कैसे हुआ ? कदाचित् किसी दिन मैं पानी में डूबने लगूं, और कोई आपके सिद्धान्त का अनुसरण करके मुझे न निकाले तो मुझे कितना दुःख होगा।

इसलिए आज से मैं इस तेरापंथ सम्प्रदाय को त्यागता हूं। मैं किसी धर्म का अनुयायी न रहना तो अच्छा मानूंगा, परन्तु तेरापंथ का अनुयायी कदापि न रहूंगा। उस दिन से सोहनलाल जी ने तेरापंथ सम्प्रदाय को सदा के लिए त्याग दिया।

यह कथा जितनी पठनीय है उतनी ही तेरापंथियों के लिए अनुकरणीय भी है। अगर तेरापंथी इस कथा का अनुसरण करें तो तेरापंथ के अड़ङ्गे का उन्हें शीघ्र ही भान हो जाये, और शीघ्र ही सत्यधर्म के स्वरूप को समझ लें; परन्तु वे तो अब तक कट्टरपने में फसे हुए हैं। उनकी वृत्तिएं इतनी दूषित हो चुकी हैं

कि वह किसी साधु, सन्यासी को दान देने में भी एकान्त पाप समझ बैठे हैं। पाप के भय के कारण तो वे आज स्थानक बासी साधुओं को भी आहार देने में एकान्त पाप समझते हैं। कभी २ हमें भी ऐसे अवसर मिल जाते हैं, जहां तेरापंथियों के ही आहारार्थ जाना पड़ता है, परन्तु ऐसा कोई ही तेरापंथी होगा जो हमें सहर्ष आहार दे; अधिकतर तो हमें इन के घरों से निराश लौटना पड़ता है।

तेरापंथी मुख से बोलते तक नहीं। इस बात से स्पष्ट है कि उन्हें ऐसे कार्य में पाप की परछाई दीखती है, कि इन्हें आहार दिया और हमें पाप चिमटा; कितने तो इसी आशङ्का से दिए हुए आहार को फ़िर खोस तक भी लेते हैं। अगर खोस न सकें तो पश्चात्ताप करते हैं।

अब आप बताइये जिन के इतने सीमित विचार हैं उन्होंने देश के कल्याणार्थ क्या किया। उनकी सम्पति कब किसी के उद्धार में लगी। इधर वे भी धर्मी हैं जिन्होंने गरीबों और दीन-दुःखियों के लिए अपनी सम्पत्ति खुले हाथों लगा दी। दया के लिए अपने प्राण तक भी उत्सर्जन कर दिए; किन्तु वे तेरापंथी नहीं थे वे थे जैन धर्मानुयायी।

महाराज प्रदेशी :—

१:—यह श्वेताम्बिका नगरी के राजा थे। स्वभाव के बड़े क्रूर, दुष्ट और निर्दयी थे। उन्होंने एक बार केशीकुमार श्रमण

निर्ग्रन्थ का तात्विक उपदेश सुना, सुनते ही हृदय दीन दुःखियों पर किए हुए पाप से कांप उठा, पूछ बैठा महाराज ! मैं इन पाप कर्मों से कैसे छूट सकता हूं। श्रमण निर्ग्रन्थ ने उत्तर दिया कि रमणीक बन जा। हे राजन् अगर तू रमणीक बन गया तो तू अवश्य ही पाप से छूट जायगा। राजा ने सहर्ष उत्तर दिया कि महाराज मैं आज से रमणीक बनता हूं। अपने समस्त राज्य के (प्रदेशी का राज्य सात सहस्र गामों पर था) चार विभाग करता हूं। इन में से एक विभाग की आमदनी से दानशाला खोलूंगा। जिस में अनेक प्रकार के भोजन पानी तैयार कर के बहुत से दरिद्रों के लिए, साधु सन्यासी और ब्राह्मणों के लिए तथा अनाथ अपाहिजों के लिए स्वयं अपने हाथों से वितरण करूंगा। उन की हर प्रकार की सेवा शुश्रूषा करूंगा। शुद्ध निर्ग्रन्थ धर्म पालन करता हुआ विचरूंगा।

(राजप्रश्नीय सूत्र)

२:—निर्ग्रन्थ धर्म के अनन्य भक्त भगवान् मल्लिनाथ के माता पिता ने पुण्यार्थ दीन अनाथों के लिये दानशाला खोलकर अपनी अथाह सम्पत्ति का सद्व्यय किया था।

(ज्ञाता सूत्र)

३:—तुंगिया नगरी के श्रावक साधु और अनाथ आदि की भिक्षा के लिये घर के द्वार सारे दिन खुले रखते थे।

(भगवती)

४:—तेईस तीर्थङ्करों ने विपुल दीन अनाथादिक को वर्षी दान दिया।

(कल्प सूत्र)

५:—लेपगाथापति जो धर्माधर्म जीवाजीव और पुण्य पाप का ज्ञाता था। उसने इतनी बड़ी उदकशाला (प्याऊ) बनवाई थी, जिसमें सैकड़ों दरवाजे थे।

(सूयगडांग सूत्र)

ये हैं दानवीरों की अमर गाथाएं। पुनीत इतिहास, पूर्वजों की टेक, प्राचीन सभ्यता और मानव हितैषिणी संस्कृति इसे कहते हैं। आदर्श जीवन, स्पष्ट शब्दों में ज्वलन्त उदाहरण भी इन्हें ही कहा जा सकता है। देखिए दयालुता की पराकाष्ठा ! क्षुद्र से जीवन के लिए शरीर का बलिदान ! रक्षा करने का महाप्रण करने वालों का भी जीवन वृत्त पढ़िये।

६:—एक एक मास की घोर तपस्या करने वाले धर्म घोष मुनिराज पारणे के दिन नगर में गये। भिक्षा के निमित्त वह नाग श्री ब्राह्मणी के भी घर जा पहुंचे। नाग श्री ने मुनि को व्यर्थ सा समझ कर फालतू पड़ा कड़ुवा तूम्बा सारा ही दे दिया। मुनि जी ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और लाकर गुरु के सम्मुख रख दिया। गुरुदेव ने उस शाक को चखा, और मुंह से निकाल कर उसे कहीं दूर परठ दिया। उन्होंने कहा कि हे धर्मघोष यह

शाक हलाहल विष है, इसे बाहर शुद्ध भूमि में गिरा आओ, यह एक दम अभक्ष्य है। अगर इसे खाओगे तो अकाल में ही मर जाओगे। शिष्य उसी तरह उसे उठाकर बाहर चल पड़े, एक ऊंचे से आवे पर बैठ कर उस तूम्बे का कण छिटक दिया, और देखते रहे कि इसका परिणाम क्या होता है। इतने ही में वहां सैकड़ों कीड़ियों के ढेर लग गए, उस तूम्बे के कण से चिमट गईं।

हाय हन्त! वे कीड़िएं सदा के लिए ही चिमट गईं क्या? हाय! देखते २ सैकड़ों कीड़िएं मौत के घाट उतर गईं।

मुनि श्री से देखा न गया। जब एक कण से शतशः कीड़िओं की जान जा सकती है तो इस सारे तूम्बे के शाक से असंख्य ही जानें खत्म हो जावेंगी।

ओह! यह शरीर ही किस लिये है? इस प्रश्न ने धर्मघोष मुनि के अन्तस्तल में धुक धुकी सी लगा दी। आत्मा ने पुकारा कि यह जीव दया के लिये। लम्पट तथा उच्च तार्किक मन कहने लगा, अरे! हमें इन के मरने का क्या पाप?

गुरु की आज्ञा का पालन करना है। स्थान शुद्ध और प्रासुक ढूंडना तो हमारा कर्तव्य है, अगर फिर भी कीड़िएं मरें तो हमारा क्या दोष?

परन्तु वह दयालु करुणावरुणालय आत्मा उन कीड़ियों की रक्षा चाहती थी। उन कीड़ियों की दया के लिए वह विषमय तूम्बे का शाक अपने पेट में भर लिया। मुख से वह गरल निगल गया

गिराया नहीं, कीड़िएं न मर जाएं उद्देश्य केवल यही था। उस शाक ने अपने प्रभाव से मुनि का शरीर खण्डशः कर दिया। अन्त में उसका परिणाम यह हुआ कि मुनि जी स्वर्ग सिधार गए। देहत्याग के अनन्तर उन की आत्मा २६ वें देवलोक में चली गई। पटहनाद हुए, दुंदुभि बजी, आखिर सुरासुरराज ने दयाध्वजाभिवादत किया।

सुराङ्गनाओं ने "वन्देमातरम्" गीत गान किए।

(ज्ञाता सूत्र)

७—भगवान् नेमनाथ ने उन रुके हुए पिञ्जरवद्ध पशुओं को छुड़वाने के लिए अपने रथ को पीछे मोड़ दिया, विवाह को तिलाञ्जलि दे दी।

सोऊण तस्स वयणं वहुपाणि विणासणम् ।
चिन्तेइ स महापन्नो सानुकोसो जिये हिउ ॥

[उत्तराध्ययन सूत्र अ० २२ गा० १८]

भगवान् नेमनाथ उन पिञ्जरवद्ध प्राणियों के दयार्द्र वचन सुनकर और अपने विवाहार्थ अनेक जीवों का विनाश देखकर वह महाप्राज्ञ भी चिन्तित हो गए। अन्त में उन्होंने उन जीवों पर अनुकम्पा करके प्राणदान दिया अर्थात् सारथि ने भगवान् का आशय समझ कर उन प्राणियों को बन्धन मुक्त कर दिया। भगवान् ने उसे इनाम में आभूषण दिए। विवाह से विरक्त हो गए।

पाठकगण ! अन्य भी पढ़िए। जैन-धर्म के उदार सुपूतों की अमर कथाएं।

हमारे शासन नायक भगवान् महावीर स्वामी ने गोशाले को अनुकम्पा से बचाया था।

[भगवती सूत्र]

जिसके शासन नायक धर्म प्रवर्तक चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् अनुकम्पा के भण्डार हों, जिनका उद्देश्य जीवों का संरक्षण करना हों, उनके शिष्य साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, आदि का दयालु बनना, जीवों का बचाना, तो प्रकृतिसिद्ध ही है।

शायद मुझे आगे भी समय मिले, जबकि मैं दयादान के शास्त्रोक्त ज्वलन्त इतिहास को शृंखलावद्ध कर पुस्तक के रूप में आपके समक्ष उपस्थित करने का प्रयास करूंगा। आज तो थोड़े में ही मैंने तेरापंथी और जैनधर्मियों के आदर्शों को समक्ष रख कर जैन समाज के सामने यह लेख उपस्थित करना है।

पाठक समझेंगे कि जिनका हमारे से धर्म में ही मतभेद हो जाय, तो उनका मेल हमारे से कैसे संभव है? जब तक वे अपने हठ भूले में भूलना पसन्द करते रहें।

मैं जैन समाज तथा तेरापंथ के अग्रगण्य नेताओं से इतना तो अवश्य कह कर ही रहूँगा कि इस पुस्तक का अवलोकन वे अवश्य करें, और धर्म-सिद्धान्त, संस्कृति सभ्यता और इतिहास

में तुलना तो करके देखें कि तेरापंथ और जैनधर्म में कितना मतभेद है।

क्या मैं उन से सत्यनिर्णय प्राप्त करने की आशा करूँ? निर्णय ठण्डे दिमाग से मंजा हुआ होना चाहिये। ऐसा न हो जैसा तेरापंथी साधु प्रश्नकर्त्ता श्रावकों को मनघड़न्त अटकलों के घुमाव दे कर उत्तर दिया करते हैं।

प्रश्नकर्त्ता पूछता है, कि महाराज! जीव बचाने में पुण्य है, पाप, या धर्म? तेरापंथी साधु इत्तर दिया करते हैं, कि तुम जैन हो वा अजैन?

क्योंकि अटकलें तो जैन और अजैन के लिए अलग रखी इस लिए सर्वप्रथम उत्तर के स्थान पर प्रश्न किया जाता है।

अगर प्रश्नकर्त्ता अजैन हो, तो उत्तर देंगे कि भाई अगर कोई बचा रहा हो तो हम मनाह नहीं करते।

देखिये कितना ठीक उत्तर है।

प्रश्नकर्त्ताः—महाराज! मैं पूछता हूँ जीव बचाने में पुण्य हुआ या पाप?

महाराजः—अरे भाई हम भी तो यही कहते हैं कि जीव बचाने में लाभ होता है। प्रश्नकर्त्ता समझ जाता है, कि महाराज ने जीव बचाने में लाभ बताया है, अर्थात्, पुण्य।

उसकी शंका दूर हो जाती है। उसके चले जाने पर अगर उन्हीं का श्रावक पूछ बैठे, कि महाराज! आपने जीव बचाने में लाभ बता दिया, यह कैसे?

तो महाराज उत्तर दिया करते हैं "भाया तू समझे कोई नाहीं" वह तो उत्तर देने की चतुराई है। लाभ तो पुण्य और पाप दोनों का ही होता है। उत्तर का आशय था पाप का लाभ हुआ। अगर प्रश्नकर्ता जैन हो तो उससे पहिले ही प्रश्न का उत्तर यह कहेंगे, कि भाई बता फलाने थोकड़े का इतना बोल कौनसा है। श्रावक सोचने और बताने में असमर्थ सा दिखाई देता है। आस पास के तेरापंथी श्रावक होहल्ला मचा देते हैं, अरे ! इतनी भी बात नहीं आती। सिद्धान्त के विषय में बात पूछने चले आए।

श्रावक शर्मिन्दा हो जाता है, बात समाप्त हो जाती है।

पाठक गण ! ज़रा सोचने की बात है, कि उन से प्रश्न तो जीव बचाने का फल पुण्य पाप पूछने का था। अतः उत्तर भी इसी बात का होना चाहिये था, अर्थात् पुण्य हुआ या पाप; किन्तु वे उत्तर दें भी कैसे पुण्य कहना नहीं, पाप कहने में बदनामी होती है। इसलिये सीधा स्पष्ट उत्तर न देकर कपट पूर्ण आड़ा टेढ़ा निर्णय देकर अपने अन्ध श्रद्धालु भक्तों को अपनी बाड़ा-बन्दी मजबूत करने का प्रयत्न किया जाता है।

ऐसा निर्णय मुझे नहीं चाहिये निर्णय न्याय युक्त होना चाहिए।

—:*:—

समय की पुकार

तेरापंथ ने पौने दो सौ वर्षों में जैन समाज के टुकड़े टुकड़े कर दिए हैं। आज भी वह सर्वत्र "फूट का जाल पावो" और लूट का माल खावो, वाली नीति का अनुसरण कर रहा है।

समाज का शोषण करना, निर्बलता कूट कूट कर भरना, उसने अपना दैनिक कार्य क्रम सा बना लिया है।

आज उसने दया दान में पाप समझाने का और केवल हमें देने में पुण्य बताने का नियम सा ले लिया है।

समाज संगठन तुड़वाना, भाई का भाई से मुँह मुड़वाना, ही तेरापंथ ने अपना सिद्धान्त घड़ लिया है।

अगर आज से ही हमारी समाज इस समाज हानि का विचार न करेगी तो ठीक समझिए कि यह भावी विनाश और तबाही के चक्कर में फंसेगी।

बेशक जैन समाज उदार है, सहिष्णु है, वह उसकी छाती

पर मूंग दलने वालों को भी क्षमा करती आई है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगा लेना चाहिए, कि वह अत्याचार भी सह लेगी। इस पर चाहे कोई कितने ही जुल्म ढाता चला जाए यह उसका प्रतिकार न करेगी ?

यह समझ कर मन मानी ढाल चौपाइयां सी बनाकर उसे फुसलाना, इसका परिणाम वह होगा जो शेर को जगाने से होता है।

तेरापंथ समाज आज जैन समाज के सपूतों को व्यर्थ के अड़ंगे के झांसे में लिए फिर रहा है यह कभी नहीं होने दिया जायगा।

हां यह हो सकता है, कि तेरापंथ अपनी भूलों पर पश्चात्ताप के आंसु गिरा कर जैन समाज से क्षमा मांग ले तो समाज अवश्य ही :— क्षमावीरस्य भूषणम् , का आदर्श सम्मुख रख कर क्षमा की भिक्षा दे दे।

अगर तेरापंथ ने इस मेरे नम्र निवेदन को मान लिया तो अच्छा। अगर उन्होंने अब भी अपना जाल फैलाना चाहा तो यह उनकी इतनी बड़ी भूल होगी; जो शायद इतिहास की ऐतिहासिक भूलों में अग्रस्थान ग्रहण करे।

अगर संसार में जुल्म करने वाले जालिम का प्रतिकार न किया गया तो संसार अन्याय का घर बन जावेगा। अतः आज भी समाज ने इस अत्याचार का कुछ प्रतिकार न किया तो मैं

कहूंगा, कि वह समाज कायर है, बल हीन है, नपुंसक है, जो शासनपति श्रमण नायक भगवान् महावीर के विषय में घृणित शब्द सुनकर भी प्रतिकारार्थ न उठ सका, तो समाज सदियों तक नहीं उठ सकेगा। इतने में उसे बड़े बड़े मगरमच्छ हड़प भी कर चुके होंगे।

वह नवयुवक नहीं जो अपनी आँखों से अपने प्राणों से भी प्यारे धर्म का अपमान देखता है। वह जीवन नहीं मृतक कलेवर है, जो शास्त्रों के अनर्थ रूप तिरस्कार की घूंट पीता है। वह दिल नहीं जो भगवान् के विरुद्ध बोलने वाले का दुःसाहस सहन कर लेता है। भगवान् का वह सच्चा श्रमण नहीं जो इन आक्रमण कारियों को देखकर भी आंखें मून्द लेता है।

अयि! भगवान् के सच्चे श्री संघ! समझ ले, उठ, अगर तू अब भी न उठ सका तो सदा को लिए तुझे मृतप्राय सा बनना पड़ेगा।

ऐ समाज के जैन वीरो! तुम्ही उठ खड़ो कुछ करके दिखाओ। अगर तू ने भी करवट न ली तो समझलो।

"अगर अब भी न समझोगे तो मिट जाओगे दुनियां से।
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में॥

जहां भगवान् महावीर ने आध्यात्मिक संघर्ष का दुंदुभिनाद वजा कर मिथ्यात्व भरी शक्तियों को पराजित कर डाला था।

गौतम जैसे धुरन्धर जो संसार भर के पण्डितों का विजेता अपने आपको मानता था। उसने भी भगवान् के आध्यात्मिक बल के आगे कुछ क्षणों में ही घुटने टेक दिए थे। उस पूज्य महावीर की सन्तान कैसे पीछे हट जाएगी। तेरापंथ अपने सिद्धान्त जैन धर्म के विरुद्ध बना तो बैठा है. किन्तु आज उसे सिद्ध करने के लिए उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। आज इक्कीसवीं सदी है, इसलिए तेरापंथ जैन शास्त्रों के अर्थों का अनर्थ चड़कर समाज को धोके में फंसाना चाहता है, किन्तु उसे समझ लेना चाहिए, कि समाज आज जाग चुका है। जैन-संस्कृति ने फिर से करवट ली है। आज वह उसे बदनाम करने वाले कलङ्करों का प्रतिकार करने के लिए लालायित है।

आज उसका खिलता हुआ यौवन संसार भर पर छा जाना है, जिसे कोई रोक न सकेगा। जैन समाज ने अनेक प्रकार की मनोवृत्तियों का विशाल अध्ययन किया है। अनेक बार उसने धर्म संघर्ष की विजय माला अपने गले में सुशोभित की है। असंख्य प्रकार के हिंसक विश्लेषणों को उसने कागज़ की रद्दी की टोकरी में फैंका है।

तेरापंथ की तो बात ही क्या है। यह तो वैसे ही स्वार्थ से कूट कूट कर भर रक्खा है। इसे तो एक अनजान या हठी व्यक्ति के सिवा कोई सद् बुद्धि मानने के लिए तैयार ही नहीं।

आज का संसार तो एक मात्र सच्ची अहिंसा का पुजारी

बनना चाहता है। वह फिर से सहानुभूति, प्रेम, करुणा, दया, अनुकम्पा और वात्सल्य का दरया बहाना चाहता है। बेशक इसके लिए श्रमण संघ को क्रान्ति मचानी होगी, परन्तु हम उस क्रान्ति में खेलना चाहते हैं जिसमें समाज,सिद्धान्त और तात्त्विक ज्ञान निखरा करता है। हमारा नव मुनि मण्डल एक-एक से निहार रहा है। कब हमें अहिंसा के प्रचार का नाद सुनाई दे और हम तभी प्रतिकारार्थ प्रयाण कर दें।

हम इनके जडत्व को दूर कर चेतनत्व का जादू भर दें। आज हमने फिर पुरातन काल का स्मरण कर स्वर्ण युग बनाना है,शांति और दया का सच्चा साम्राज्य स्थापित करना है।

साधुता का विडम्बन जैन धर्म पर लगाए जाने वाले कलङ्क को सदा के लिए मिटाना है।

ओ मेरे नवयुवक श्रमण साथिओ! अब समय है। संसार तुम्हारो ओर देख रहा है। उसकी आंखों में लालसा है। वह स्वार्थ की आग से दुःखी हो रहा है।

हम अनुकम्पा करके ही उसका दुःख दूर करने के लिए कुछ प्रयत्न करें।

विशेष कर इन स्वार्थियों के विषाक्त भाषण से बागड़ देश धर्म से पतित हो चुका है। उसके लिए हमें फिर से आन्दोलन करना चाहिये, और यह पञ्जाब का दौरा तो इनका ऐसे समाप्त

हो जाएगा, जैसे बादलों की छाया।

हां इसके लिए हमें क्रान्तिकारी बनना चाहिए। क्रान्ति ही संसार में सबसे महत्व की वस्तु है। अब समय है, सुअवसर है। नहीं तो :—

फिर पछताए क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत ॥

ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!